ईशु ख्रिस्त

लेखक
किशोरलाल घनश्यामलाल मशरूवाला

अनुवादक
काशिनाथ त्रिवेदी



नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

पहली बार : २,२००

चौदह आना

मई, १९४६

यह पुस्तक

कोई १६-१७ साल पहले नवजीवनकी 'अवतार-लीला-लेखमाला'के एक भागके रूपमें इस नामकी मेरी पुस्तक प्रकाशित हुई थी। लगभग उस समूची पुस्तकको नये सिरेसे लिखकर और उसमें कुछ बढ़ाकर यह पुस्तक तैयार की है। नये अध्यायोंमें प्रवचन, रूपक और सुभाषित मुख्य हैं। कुछ टिप्पणियाँ भी नई हैं और अन्तमें समालोचना दी है।

चरित्र-सम्बन्धी हक़ीक़तके लिए बाइबलके मैथ्यू, मार्क, लूक और जॉनकी पुस्तकोंका ही आधार लिया है। हक़ीक़तोंका चुनाव किसी एकमेंसे नहीं, बल्कि सभी पुस्तकोंमेंसे किया है।

पुस्तकका प्रथम संस्करण छपने पर मुझे कुछ गुजराती ईसाइयोंके दो-तीन आलोचनात्मक पत्र मिले थे। पुस्तक उन्हें दो कारणोंसे पसन्द नहीं आई थी: एक, पुस्तकमें चमत्कारोंका उल्लेख गौणरूपसे किया गया था; दूसरे, ईशुके क़ब्रमेंसे उठनेके बारेमें मौन रक्खा गया था। इन दोनोंके बारेमें मैंने अपने विचार पुस्तकमें स्पष्टतापूर्वक उपस्थित किये हैं। मुझे खेद है कि कदाचित् इससे सम्प्रदायमें श्रद्धा रखनेवाले ख्रिस्तियोंको संतोष न होगा। किन्तु मैं विवश हूँ। मैं जिसे सत्य समझता हूँ, उसीको व्यक्त करना मेरा कर्त्तव्य है। अपनी शक्ति और दृष्टिके अनुसार इस सत्यको व्यक्त करनेमें मैंने अत्यन्त सावधानी तो बरती ही है, फिर भी मैं चाहता हूँ कि इसकी वजहसे किसीकी शुभ श्रद्धाओंका ऐसा खण्डन न हो कि जिससे एक नगण्य-सी शुभ वस्तुके लिए भी मनमें नास्तिक भाव उत्पन्न हो; न इसके कारण किसीकी अधोगति करनेवाला बुद्धिभेद ही उत्पन्न हो; जो मार्ग अपने लिए अत्यन्त कल्याणकारी माना गया हो, उसे तब तक छोड़नेकी इच्छा भी न हो, जब तक उससे अधिक अच्छा कोई मार्ग बुद्धिको पट न जाय। जिन पाठकोंको यह लगे कि पुस्तकमें इन दोषोंको उत्पन्न करनेवाला एक भी वाक्य है, वे कृपापूर्वक मुझे उससे सूचित करेंगे, तो मैं उस पर विचार किये बिना न रहूँगा।

ऐसे किसी दोषके न रहते हुए भी किसीकी अन्धश्रद्धाको चोट पहुँचे, और उसके दृष्टिकोणको एक नई दिशा मिले, तो वह इष्टापत्ति ही है। आपत्ति इसलिए कहता हूँ कि एक प्रकारकी भावनामेंसे दूसरी उच्चतर भावनामें

प्रवेश करनेका मार्ग अत्यन्त कष्टप्रद है। बुद्धि द्वारा किसी नई वस्तुको सत्य समझनेके बाद भी मन, वचन तथा शरीरसे उसके प्रति निष्ठा उत्पन्न होनेमें काफ़ी देर लगती है। यह समय पुराने और नये संस्कारोंके आपसी संघर्षोंसे जूझनेमें बीतता है। इस लड़ाईका दुःख तीव्र होता है। लेकिन वैसा दुःख भोगे बिना छुटकारा भी नहीं मिलता। प्रसूतिकी पीड़ाका अनुभव किये बिना माँ बच्चेका मुँह नहीं देख पाती; फ़र्क़ यही कि प्रसूतिसे पहले उसका स्वास्थ्य जितना अच्छा, पीड़ा उतनी ही कम। इसी तरह किसीका संघर्ष देर तक चलता है, किसीका थोड़े समय तक। लेकिन संघर्ष तो मोल लेना ही पड़ता है। उन्नतिकी तीव्र इच्छा रखनेवाले पुरुषको इस युद्धके लिए आवश्यक धैर्य मिल जाता है; और यही वह शुभ सामग्री है, जो मनुष्यको प्राप्त है। ऐसी वेदनाको जगानेमें मेरा निमित्त बनना भी मेरे लिए तो एक दुःखकी ही बात है, लेकिन यहाँ मैं निरुपाय हूँ। हाँ, मैं ऐसे पुरुषको यह आश्वासन दे सकता हूँ कि एक ऐसे व्यक्तिकी पूरी सहानुभूति उसके साथ है, जिसने इस दुःखको तीव्रतापूर्वक अनुभव किया है।

यदि ख्रिस्ती भाई इस विश्वासके साथ इस पुस्तकको पढ़ेंगे, तो उन्हें भी यह पुस्तक उपयोगी ही मालूम होगी, और धर्म-परिवर्तन करानेके झमेलेमें पड़े बिना वे संसारको ख्रिस्ती धर्मकी विशेषताका लाभ पहुँचा सकेंगे। वे स्वयं पांथिक (साम्प्रदायिक) श्रद्धाकी संकुचिततासे मुक्त हो जायँगे, और फिर भी सच्चे अर्थमें ख्रिस्ती धर्मके तत्त्वका पालन कर सकेंगे। उनके लिए हिन्दू धर्मकी ज्ञानदृष्टि उतनी ही आवश्यक है, जितनी हिन्दुओंके लिए ख्रिस्ती धर्मकी मानवसेवा द्वारा ईश्वरोपासनाकी दृष्टि। लेकिन यहाँ इसकी विशेष चर्चा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं।

बाइबलमें पाये जानेवाले यहूदी नामोंके शुद्ध उच्चारण मैंने एक यहूदी सज्जन डॉ० एब्राहमसे जाने हैं। किन्तु अंग्रेज़ी उच्चारणोंसे परिचित पाठकोंके लिए पुस्तकके अन्तमें एक शब्द-सूची दी है। इसके सिवा, बैंगलोरमें रहनेवाले मेरे एक मित्र श्री राल्फ रिचर्ड कैथानकी ओरसे कुछ जानकारी मिली है। मैं इन दोनों सज्जनोंका आभार मानता हूँ।

किशोरलाल घ० मशरूवाला

वर्धा, १९४१

प्रस्तावना

इस छोटी-सी पुस्तकमालामें कुछ अवतारी पुरुषोंका संक्षिप्त जीवन-परिचय देनेका विचार है । इस परिचयके लिए जो दृष्टिकोण सामने रक्खा गया है, उसके सम्बन्धमें दो बातें लिखनी ज़रूरी हैं ।

अवतारी पुरुषका अर्थ क्या ? हिन्दुओंका खयाल है कि जब पृथ्वी पर धर्मका लोप होता है, अधर्म बढ़ जाता है, असुरोंके उपद्रवसे समाज पीड़ा पाता है, साधुताका तिरस्कार किया जाता है, निर्बलकी रक्षा नहीं होती, तब परमात्माका अवतार प्रकट होता है । लेकिन हमारे लिए यह जानना ज़रूरी है कि अवतार किस तरह प्रकट होते हैं, प्रकट होने पर किन लक्षणोंसे उन्हें पहचाना जाता है, और उन्हें पहचान कर या उनकी भक्ति करके हमें अपने जीवनमें किस प्रकारका परिवर्तन करना चाहिये ।

सर्वत्र एक ही परमात्माकी शक्ति — सत्ता — काम कर रही है । क्या मुझमें और क्या आपमें, सर्वत्र एक ही प्रभु व्याप्त है। उसीकी शक्तिसे सब चलते-फिरते और डोलते हैं । राम, कृष्ण, बुद्ध, ईशु आदिमें भी परमात्माकी यही शक्ति विद्यमान थी । तब हममें और राम-कृष्णादिकमें अन्तर क्या है ? वे भी मेरे और आपके-जैसे आदमी ही दिखाई पड़ते थे; उन्हें भी मेरी और आपकी तरह दुःख सहने पड़े थे और पुरुषार्थ करना पड़ा था; फिर भी हम उन्हें अवतार क्यों कहते हैं ? हज़ारों वर्षोंके बाद भी हम उन्हें अब तक क्यों पूजते हैं ?

वेदका एक वचन है : '**आत्मा सत्यकाम — सत्यसंकल्प है** ।' अर्थ इसका यह होता है कि हम जो सोचें या चाहें, सो प्राप्त कर सकते हैं। जिस शक्तिके कारण हमारी कामनायें सिद्ध होती हैं, उसीको हम परमेश्वर, परमात्मा, ब्रह्म कहते हैं । जानमें या अनजानमें भी इसी परमात्माकी शक्तिका आलम्बन-शरण-आश्रय लेकर हमने अपनी वर्त्तमान स्थिति प्राप्त की है; और भविष्यमें जो स्थिति हम प्राप्त करेंगे, वह भी इसी शक्तिके आलम्बनसे करेंगे । राम-कृष्णने भी इसी शक्तिके आलम्बनसे सर्वेश्वरपद—अवतारपद—

प्राप्त किया था; आगे जो अवतार होंगे, वे भी इसी शक्तिका आश्रय लेकर होंगे। हममें और उनमें अन्तर केवल यही है कि हम उस शक्तिका उपयोग मूढ़तापूर्वक, अज्ञानपूर्वक करते हैं; उन्होंने बुद्धिपूर्वक — शक्तिको पूरी तरह पहचान कर — उसका अवलम्बन किया था।

दूसरा फ़र्क़ यह है कि हम अपनी क्षुद्र वासनाओंकी तृप्तिके लिए प्रभुका उपयोग करते हैं। अवतारी पुरुषोंकी आकांक्षायें, उनके आशय महान् और उदार होते हैं; वे उन्हींके लिए आत्मबलका आश्रय लेते हैं।

तीसरा फ़र्क़ यह कि जनसमाज महापुरुषोंके वचनोंका अनुसरण करनेवाला और उनके आश्रयमें एवं उनके प्रति की अपनी श्रद्धामें अपना उद्धार माननेवाला होता है। प्राचीन शास्त्र ही उसके आधार होते हैं। किन्तु अवतारी पुरुष केवल शास्त्रोंका अनुसरण नहीं करते; वे शास्त्रोंको स्वयं बनाते और उनमें परिवर्तन भी करते हैं। उनके वचन ही शास्त्र बन जाते हैं और उनके आचरण दूसरोंके लिए दीपस्तम्भका काम देते हैं। उन्होंने परमतत्त्वको जान लिया है। अपने अन्तःकरणको शुद्ध कर लिया है। ऐसे ज्ञानवान्, विवेकवान् और शुद्ध चित्तको जो विचार सूझते हैं, जो आचरणीय प्रतीत होता है, वही सच्छास्त्र और वही सद्धर्म बन जाता है। दूसरे कोई शास्त्र न तो उन्हें बाँध सकते हैं, न उनके निर्णयमें फ़र्क़ पैदा कर सकते हैं।

यदि हम अपने आशयोंको उदार बनायें, अपनी आकांक्षाओंको उन्नत करें, और ज्ञानपूर्वक प्रभुकी शक्तिका आश्रय लें, तो प्रभु हमारे अन्दर भी अवतार रूपमें प्रकट होनेकी कृपा कर सकता है। घरमें बिजलीकी शक्ति लगी हुई है; जिस तरह हम उसका उपयोग एक क्षुद्र घण्टी बजानेमें कर सकते हैं, उसी तरह उसके द्वारा सारे घरको दीपावलीसे सुशोभित भी कर सकते हैं। इसी प्रकार प्रभु हममें से प्रत्येकके हृदयमें विराजमान है; हम चाहें तो उसकी सत्ता द्वारा अपनी एक क्षुद्र वासनाको तृप्त कर सकते हैं, और चाहें तो महान् एवं चारित्र्यवान बनकर संसारसे तर सकते हैं, तथा दूसरोंको तरनेमें मदद कर सकते हैं।

अवतारी पुरुषोंने अपनी रग-रगमें व्याप्त परमात्माके बलसे पवित्र, पराक्रमी और परदुःखभंजन बनना चाहा। उन्होंने उस बलके द्वारा सुख-

दुःखसे परे, करुणामय, वैराग्यवान्, ज्ञानवान् और प्राणिमात्रका मित्र बनना चाहा। अपने स्वार्थत्यागके कारण, इन्द्रिय-विजयके कारण, मनके संयमके कारण, चित्तकी पवित्रताके कारण, करुणाकी अतिशयताके कारण, प्राणिमात्रके प्रति अतिशय प्रेमके कारण, दूसरोंके दुःख दूर करनेके लिए अपनी समस्त शक्तिको खर्च करनेकी निरंतर तत्परताके कारण, अपनी कर्त्तव्यपरायणताके कारण, निष्कामताके कारण, अनासक्तिके कारण, निरभिमानताके कारण, और सेवा द्वारा गुरुजनोंकी कृपाको प्राप्त कर लेनेके कारण, वे अवतार माने गये, मनुष्यमात्रके पूज्य बने।

यदि चाहें, तो हम भी इसी तरह पवित्र बन सकते हैं, ऐसे कर्त्तव्य-परायण हो सकते हैं, इतनी करुणावृत्ति विकसित कर सकते हैं, ऐसे निष्काम, अनासक्त और निरभिमान बन सकते हैं। अवतारोंकी भक्ति करनेका हेतु भी यही है कि वैसे बननेका हमारा प्रयत्न निरन्तर चालू रहे। जिस हद तक हम उनके-से बनते हैं, कह सकते हैं कि उस हद तक हम उनके निकट पहुँचे हैं — हमने उनके अक्षरधामको प्राप्त किया है। यदि हम उनके-से बननेका प्रयत्न नहीं करते, तो उनका नामस्मरण करना हमारे लिए व्यर्थ है, और ऐसे नाम-स्मरणसे उनके पास तक पहुँचनेकी आशा रखना भी व्यर्थ है।

तो हम परमेश्वरकी उपासना किस प्रकार करें? पैदा होते ही हमारा पहला सम्बन्ध माताके साथ स्थिर होता है, दूसरा पिताके साथ, तीसरा भाई-बहनोंके साथ, चौथा गुरुके साथ, और पाँचवाँ मित्रके साथ। यदि हम विवाहित हैं, तो पत्नीके साथ हमारा सम्बन्ध स्थिर होता है, और अगर गृहस्थ हैं, तो बालकोंके साथ भी। इसी तरह आगे पड़ोसियोंके साथ, समाजके साथ और प्राणियोंके साथ।

अतएव यदि हम शुरूमें परमात्माका ध्यान माता-पिताके रूपमें करें, और साथ ही साथ अपने प्रत्यक्ष माता-पिताकी एकाग्र-भावसे सेवा करें, तो हमारे अन्दर आदर्श पुत्रके गुणोंका विकास होगा, और साथ ही आदर्श माता-पिताके गुणोंका ध्यान भी हो जायगा। जिन गुणोंका ध्यान होगा, वे हममें भी उत्पन्न होंगे ही; फलतः माता-पिताका वात्सल्य गुण हममें आये बिना न रहेगा।

हम बन्धुके रूपमें प्रभुका ध्यान करें और बन्धुकी सेवा भी करें, तो हम लक्ष्मण और भरतकी-सी बन्धुभक्ति प्राप्त कर सकते हैं, और रामका बन्धुप्रेम भी हममें सहज ही उत्पन्न हो सकता है।

इसी तरह प्रभुकी मित्र, गुरु, आदिके रूपमें और प्राणिमात्रके रूपमें उपासना करनी चाहिये और अपने प्रत्यक्ष मित्र एवं गुरु इत्यादिमें उसे प्रतिफलित करना चाहिये।

पत्नीके प्रति हमारी पवित्र दृष्टि तो मित्रके रूपमें ही हो सकती है, अतएव मित्र-भावनाकी वृद्धिको ही हम पत्नीव्रत कह सकते हैं। पुत्र-भावनाका विस्तार शिष्यमें, बन्धु-भावनाका मनुष्यमात्रमें और मातृ-पितृ-भावनाका विस्तार गुरुजनोंमें होना चाहिये। परमेश्वरके प्रति हमारी जो भावना है, वह प्रत्यक्ष मनुष्यके साथमें व्यक्त न हो, तो वह जड़ भक्ति ही कही जायगी।

इस उपासना-विधिके सम्बन्धमें एक चेतावनी देने योग्य है। राम-कृष्णके सदृश बननेका अर्थ राम-कृष्णके यशकी ईर्ष्या करना नहीं है। यदि हम मनमें यह आकांक्षा रक्खेंगे कि कोई वाल्मीकि या व्यास हम पर काव्य-रचना करे, घर-घर हमारी मूर्त्तियोंकी पूजा हो, हमारे नामके सम्प्रदाय चलें, हमारा जय-जयकार हो, तो हम कभी भी राम-कृष्णके समान बन नहीं पायेंगे।

इस जीवन-परिचयको पढ़कर पाठकोंका अवतारोंको पूजने लगना ही पर्याप्त नहीं है। इस पुस्तकको पढ़नेका श्रम तो तभी सफल हुआ माना जायगा, जब वे अपने अन्दर अवतारोंको परखनेकी शक्ति उत्पन्न करेंगे, और वैसे बननेके लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहेंगे।

अंतमें एक वाक्य लिखना ज़रूरी है। मैं यह नहीं कह सकता कि इसमें जो कुछ नया है, वह पहली बार मुझे ही सूझा है। अगर यह कहूँ कि मेरे जीवनध्येयको तथा उपासनाके मेरे दृष्टिकोणको बदल डालनेवाले और मुझे अंधकारसे प्रकाशमें ले जानेवाले मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ही मुझे निमित्त बनाकर यह सब कहते हैं, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। फिर भी इसमें जो त्रुटियाँ हैं, वे मेरे ही विचारोंकी और ग्रहणशक्तिकी समझी जानी चाहिये।

विषय-सूची

खण्ड-१ला

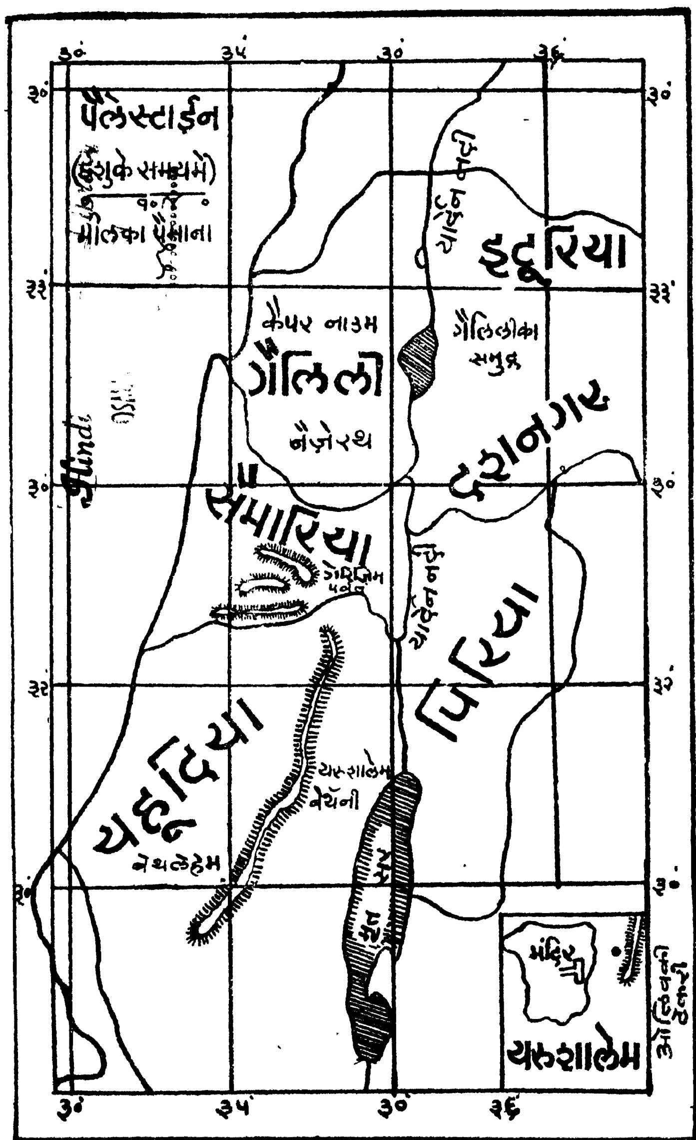
जीवन

खंड—२रा

ईशुकी वाणी

खंड–३रा

समालोचना


पैलेस्टाईन
(ईसुके समयमें)
मीलका पैमाना
कैपर नाउम
गैलिली
नैज़ेरथ
इटूरिया
गैलिलीका समुद्र
दशानगर
समारिया
गेरिज़िम पर्वत
यर्दन नदी
पिरिया
यहूदिया
यरुशालेम
बेथॅनी
बेथलेहेम
मंदिर
यरुशालेम

ईशु ख्रिस्त

खंड पहला

जीवन

१

यहूदी

एशियाके सुदूर पश्चिमी कोनेमें पूर्वांश लगभग ३४° और ३६·५° तथा उत्तरांश ३०·५° और ३३·२५° के बीच पैलेस्टाईन अथवा पैलेस्टिना नामक एक प्रदेश है। यह अरबस्तानके वायव्य कोनमें स्थित सीरिया नामक प्रान्तका एक हिस्सा है। १९१४-१८की लड़ाईसे पहले इस पर तुर्किस्तानका अधिकार था। लड़ाईके अन्तमें जो समझौता हुआ उसकी शर्तोंके अनुसार इस प्रदेशका राज्य-प्रबंध अंग्रेज़ोंके हाथमें आया। खिलाफ़त आन्दोलनका एक विषय यह भी था कि इस प्रदेश पर किसका अधिकार रहे। आजकल भी पिछले कई सालोंसे अरबों और यहूदियोंके बीच इस प्रश्नको लेकर तीव्र कलह मचा हुआ है कि यहाँ शासनाधिकार किसका और कितना रहे। इस प्रदेशकी लम्बाई उत्तर-दक्षिण १४० मील और पूर्व-पश्चिम प्रायः ८० मील है। इसका क्षेत्रफल लगभग ११,००० वर्गमील है। इसके उत्तरमें लेबननका घाट, पूर्वमें अरबस्तानका रेतीला प्रदेश, दक्षिणमें सिनाईका प्रायद्वीप, और पश्चिममें भूमध्य समुद्र है। पैलेस्टाईनके बीचोंबीच यार्देन नामक एक नदी उत्तरसे दक्षिण बहती है। मार्गमें वह गैलिली अथवा गेन्ने सॅरेनके सरोवरमें गिरती है, और दूसरी ओर पुनः उसमेंसे निकलकर मृतसर (डेड-सी)में जा मिलती है। मृतसर समुद्रके समान एक विशाल सरोवर है। उसका पानी इतना ज़्यादा खारी है कि उसमें मछलियाँ भी जी नहीं सकतीं। इसी कारण उसका नाम मृतसर पड़ा है। उसमें क्षारकी मात्रा अधिक होनेसे उसका पानी हमारे शरीरसे भी इतना अधिक भारी है कि तैरना न जानते हुए भी आदमी उसमें एकाएक डूब नहीं सकता।

पैलेस्टाईनका भूगोल

पैलेस्टाईनका अधिकांश पहाड़ी है। इसका जलवायु विविध है। कहीं बहुत ज़्यादा गर्मी पड़ती है, और कहीं बहुत ज़्यादा सर्दी। कुल

मिलाकर यहाँकी हवामें नमी ज्यादा होती है, क्योंकि यहाँ वर्षा भादोंसे चैत तक क़रीब आठ महीने होती रहती है। शेष चार महीने गर्मीके होते हैं।

यार्दन नदीके कारण इस प्रदेशके पूर्व और पश्चिम, दो विभाग हो जाते हैं। क़रीब दो हज़ार बरस पहले इसमें पाँच तहसीलें थीं। दो पूर्वमें और तीन पश्चिममें। पूर्वमें पीरिया और दशनगर (डेकापोलिस) तथा इटूरियाकी संयुक्त तहसीलें थीं, और पश्चिममें यहूदिया, सैमारिया और गैलिली। उन दिनों यह प्रदेश रूमी (रोमन) साम्राज्यका एक अंग था। इसमें मुख्यतः यहूदियोंकी बस्ती थी। यरुशालेम इस प्रदेशकी राजधानी था। जिस तरह हिन्दुओंके लिए काशी और मुसलमानोंके लिए मक्का तीर्थ है, उसी तरह यहूदियोंके लिए यरुशालेम तीर्थ है। वहाँ उनका एक बड़े-से-बड़ा और पुराने-से-पुराना मंदिर था। यह नगर यहूदिया तहसीलमें था, और इसी तहसीलमें उच्च जातिके यहूदियोंकी — अथवा मुख्यतया उनकी — बस्ती थी।

यहूदियोंकी प्राचीनता

यहूदी प्रजा संसारकी प्राचीनतम प्रजाओंमेंसे एक है। शरीर-रचनाकी दृष्टिसे वे अरबोंकी भाँति सेमेटिक जातिके माने जाते हैं। किसी समय वे बहुत समृद्ध थे। उनकी राजनीतिक और सामाजिक रचना व्यवस्थित और व्यापक थी। उनका राज्य मिस्र (ईजिप्ट), अरबस्तान और ईरान तक फैला हुआ था। दावीद (दाऊद) और शलोमो (सुलेमान)के सदृश राजाओंके शासन और नीतिको तथा मोशे (मूसा) आदि स्मृतिकारोंके धार्मिक और सामाजिक नियमोंको मात्र यहूदियोंने ही नहीं, बल्कि आस-पासकी दूसरी प्रजाओंने भी प्रमाण माना था। ख्रिस्ती प्रजाओं पर भी उनका ठीक-ठीक प्रभाव पड़ा है।

पतन

किन्तु विक्रम संवतके प्रारम्भिक कालमें यह प्रजा बिलकुल पतनकी दशाको पहुँच गई थी। इसका अपना एक राजा ज़रूर था। लेकिन उसकी सत्ता हमारे देशी राजाओंकी तरह थी। अर्थात् राजा अपनी प्रजा पर अत्याचार करने और रोमन सूबोंकी (गवर्नरोंकी) ग़ुलामी करनेके लिए स्वतंत्र था। विक्रम संवतके आरम्भके दिनोंमें तो यह राजा भी यहूदी न रहा था। यहूदियोंके

साथ उसका संबंध सिर्फ़ इतना ही था कि उसका ब्याह एक यहूदी कन्यासे हुआ था। उसे रोमके सम्राट्को खिराज भेजना पड़ता था, और उसकी प्रजाको साम्राज्यके लिए कर देने पड़ते थे। मृत्यु दण्ड जैसी सख्त सज़ा देनेका उसे अधिकार न था।

यहूदी धर्मपंथ

यहूदियोंका धर्म मूसा आदि कतिपय महापुरुषोंकी स्मृतियोंके आधार पर रचा गया है। उनमें दो मुख्य धार्मिक सम्प्रदाय थे: एक फैरिसियोंका, दूसरा सैडयूसियोंका। फैरिसी बड़े कर्मकाण्डी थे। विधिवत् यज्ञ, व्रत और उत्सव आदिका विधान पालनेमें और जाति-भेदोंकी रक्षा करनेमें उनका समूचा धर्म समाया हुआ था। वे बड़ी चौकसाईके साथ अपने पुराने रीति-रिवाजोंकी रक्षा करते थे — उनमें ज़रा भी फ़र्क़ न पड़ने देते थे। यूनानी (ग्रीस), रूमी (रोमन) आदि जातियाँ उनकी दृष्टिमें म्लेच्छवत् थीं। वे बड़ी सावधानीके साथ इन जातियोंके रीति-रिवाजोंका बहिष्कार करते थे। समयानुसार परिवर्तनकी उनके संस्कारोंमें कोई गुंजाइश न थी।

सैडयूसी लोग सुधारक थे। उन्होंने अपने पुराने रीति-रिवाज बहुत-कुछ छोड़ दिये थे। वे सांसारिक बातोंमें उन्नतिकी विशेष चिन्ता रखते थे, और राज्यकी नौकरियोंमें, तथा व्यापार आदिमें अग्रसर रहते थे। जात-पाँतके बंधनोंको शिथिल करनेमें भी वे अगुआ थे।

इस तरह फैरिसी अपने पूजापाठमें व्यस्त रहते, और सैडयूसी धनोपार्जनमें बझे रहते। फैरिसियोंको सदाचारका कुछ खयाल था, लेकिन विचार और पुरुषार्थका बल कम था, और अंधश्रद्धा एवं असहिष्णुता बहुत थी। इसी कारण उनमें धर्मान्धता भी थी। सैडयूसियोंमें विचारका बल तो था, लेकिन उन पर विदेशीकी प्रबल मोहिनी पड़ी हुई थी: उनका झुकाव पूरे-पूरे यूनानी या रूमी बननेकी आर था।

पुजारी वर्ग

ऊपर कहा गया है कि यहूदियोंका मुख्य मंदिर यरुशालेममें था। इस मंदिरमें बलि चढ़ानेका अधिकार पुजारियोंके एक विशेष वर्गको प्राप्त था। गाँव-गाँवमें छोटे मंदिर (सिनेगॉग) भी होते थे। लेकिन वहाँ न विधिवत् पूजा होती थी, न बलि चढ़ाई जाती थी। पुजारियोंके लिए पूजाकी बारियाँ

बँधी हुई थीं, जिनके अनुसार वे पूजाके लिए यरुशालेम आते थे। इन पुजारियोंको यहूदी (हिब्रू) भाषामें कोहेन कहते हैं, और इनके आचार्य अथवा महापुजारीको कोहेन हम्मादोल कहते हैं। उसकी नियुक्ति पुजारी चुनाव द्वारा करते हैं। लेकिन ईशुके जन्मकालमें तो रोमन साम्राज्यका प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया था कि इस चुनावमें भी रोमनोंका अपना आदमी ही चुनकर आ सकता था।

शास्त्री वर्ग

इनके बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण वर्ग शास्त्रियोंका था। इसी वर्गके कुछ लोग लेखकका काम करते थे। ये लोग धर्म और आचारके विषयमें निर्णय देते, और इनके निर्णय काशीके शास्त्रियोंके निर्णयकी भाँति मान्य माने जाते। अत्यन्त विद्वान् शास्त्रीको लोग रॅब्बी कहते थे।

इकहत्तरी सभा

रोमन साम्राज्यमें यहूदियोंके जो भी धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक अधिकार शेष रहे थे, वे इकहत्तर आदमियोंकी एक सभाको सौंपे गये थे। महापुजारी, पुजारी और दूसरे कुछ विद्वान् यहूदियोंको इस सभामें बैठनेका अधिकार था। लेकिन इसे रोमके सूबेके अधीन रहना पड़ता था, और इसकी राजनीतिक महत्ता नाम-मात्रकी ही थी।

दानीवर्ग

इनके सिवा देशमें कर उगाहनेवाले दानियोंका एक वर्ग था। जिस तरह वॉरेन हेस्टिंग्ज़के ज़मानेमें बंगालमें महसूल वसूल करनेके अधिकारकी बोली लगाई जाती थी, उसी तरह रूमी साम्राज्यमें भी ठेकेदार या इजारेदार लोग अलग-अलग गाँवोंका महसूल वसूल करनेका अधिकार खरीदते थे। फिर अपने लिए मुनाफ़ा कमानेके खयालसे वे प्रजाजनोंसे ज्यादा महसूल वसूल करते थे। इस कारण सहज ही इस वर्गके लोग प्रजाजनोंको अतिशय अप्रिय मालूम होते थे। प्रजा उन्हें तिरस्कारकी दृष्टिसे देखती थी, और उन्हें पापी तथा देशद्रोही मानती थी। अलबत्ता, उनमें कुछ अच्छे आदमी भी थे। फिर भी, दानीका साथी कलवारके साथीकी तरह शककी नज़रसे देखा जाता था। *

* मालूम यह होता है कि अक्सर कलवार और दानीका धन्धा एक ही साथ होता था।

व्रत और उत्सव

इसीके साथ यहूदियोंके कुछ व्रतों और उत्सवोंका परिचय देना ठीक होगा। ईशु ख्रिस्तके जीवनमें इनका उल्लेख करना पड़ेगा।

शब्बाथ

जिस तरह ख्रिस्ती या ईसाई रविवारको और मुसलमान गुरुवारकी शामसे शुक्रवारकी शाम तकके समयको पवित्र और विश्रान्तिका समय मानते हैं, उसी तरह यहूदियोंमें शुक्रवारकी शामसे शनिवारकी शाम तकके चौबीस घण्टे शब्बाथ (विश्रान्ति दिन)के माने जाते हैं। उस दिन किसी भी प्रकारका उद्योग करना व्रतभंग करनेके समान है।*

पेसाह

मार्च तथा अप्रैल महीनेमें यहूदियोंका बड़े-से-बड़ा पेसाह÷ अर्थात् उद्धार नामक पर्व पड़ता है। ख्रिस्तियोंके 'गुड फ्राइडे' और ईस्टरके त्यौहारके दिन और इस पेसाह पर्वके दिन एक ही होते हैं। यमराजने यहूदियोंके घरोंको छोड़कर केवल मिस्रवालोंका ही नाश किया, और यहूदी लोग रेगिस्तानको पार करके सही-सलामत पैलेस्टाईन आ पहुँचे, इस घटनाकी यादमें यह त्यौहार मनाया जाता है। इस अवसर पर यरुशालेममें कुछ दिनों तक उत्सव मनाया जाता, और लगभग सभी यहूदी इस पर्व पर मुख्य मंदिरकी यात्रा करते।

सुक्कोथ

सुक्कोथ अथवा तम्बू-निवास पर्व भी यहूदियोंका एक बड़ा पर्व है। यह पर्व शरद्-ऋतुमें पड़ता है, और एक हफ़्ते तक चलता है। किसी समय यहूदियोंको अपने घरबार छोड़कर तंबुओंमें दिन बिताने पड़े थे, और जहाँ-तहाँ भटकना पड़ा था, उसीकी यादमें यह पर्व मनाया जाता है। इस पर्वके

---

* यहूदी, अरब आदि सेमेटिक जातियोंमें आम तौर पर दिवस, मास और वर्षकी गिनती चन्द्रका अनुसरण करती है। इसी कारण उनमें सूर्योदयसे सूर्योदय, या आधी रातसे आधी रात अथवा दुपहरसे दुपहर तक तिथि या वार नहीं गिने जाते, बल्कि सूर्यास्तसे सूर्यास्त तक एक तिथि या वार माना जाता है।

÷ अंग्रेजी बाइबलमें इसके लिए 'पासोवर' (Passover) अर्थात् 'टलना' शब्द प्रयुक्त हुआ है; पेसाह शब्दके साथ उसका साम्य आकस्मिक ही है।

अवसर पर यहूदी लोग घर-बार छोड़कर गाँवके बाहर तम्बुओं या झोंपड़ियोंमें रहा करते थे।÷

क़रीब दो हज़ार बरस पहले यहूदियोंकी ऐसी स्थिति थी। ईशु ख़्रिस्तके जन्मके समय (ई० सन्‌से पहले ७से ४, अथवा वि० सं० ४९ से ५२के बीचमें*) हेरोद नामक एक क्रूर और वहमी आदमी यहूदियोंका राजा नियुक्त हुआ था। वह स्वयं यहूदी नहीं था। किन्तु अन्तिम यहूदी राजाकी पौत्रीसे ब्याह करके वह राज्याधिकारी बना था। वह सत्ताका लोभी था और स्वयं निरंकुश बनना चाहता था। रूमी सम्राट्‌को भारी-भारी नज़राने भेजकर और वसीलेवाले यहूदियोंको ऊँचे अधिकार देकर वह उनके मुँह बन्द करता था, और फिर प्रजा पर मन-माना कहर बरसाता था। पुजारियोंको ख़ुश रखनेके लिए उसने यरुशालेमका मुख्य मंदिर फिरसे बनवा दिया था। उन दिनों वह मंदिर अपने सौंदर्यके लिए इतना विख्यात था कि लोग कहते थे, जिसने उसे न देखा, वह जान नहीं सकता कि सौन्दर्य क्या चीज़ है।

ईशुका जन्मकाल

अलबत्ता, यहूदियोंमें एक ऐसा दल पैदा हो गया था, जो अपने देशकी पराधीन अवस्थासे दुःखी रहता था और उससे मुक्त होनेका उद्योग किया करता था। यह दल साम्राज्यका शत्रु माना जाता था। लोग इसे ज़ेलोत कहते थे।

ज़ेलोतवर्ग

÷ अंग्रेजी बाइबलमें इसे टॅबर्नेकल (Tabernacles)का पर्व कहा है। टॅबर्नेकल्का अर्थ यात्रामें साथ ले जाने योग्य लकड़ीका मंदिर या तम्बू होता है।

* ईशुके जन्मका वर्ष गिननेमें कोई चार सालकी भूल रह गई है, इसका पता उसके नामसे सन् शुरू होनेके कई वर्षों बाद चला; यानी उसका जन्म ईस्वी सन्‌के पहले वर्षमें नहीं, बल्कि उसके कोई चार साल पहले हुआ था

२

योहान

यहूदियोंकी इस परिस्थितिमें उनके अन्दर दो सत्पुरुषोंका जन्म हुआ : योहान (योहान्नान, जोन) और ईशु (जीसस) । ज़खारिया और

जन्म

एलिज़ाबेथ नामक एक पुजारी दम्पतिके घर योहानका जन्म हुआ । वे एकमार्गी और धार्मिक क्रियाकाण्डमें सरल भावसे श्रद्धा रखनेवाले थे । ठेठ बुढ़ापेमें, जब सन्तान-प्राप्तिकी कोई आशा न रह गई थी, उनको पुत्र-प्राप्ति हुई थी । योहानके बचपनकी किसी बातका पता नहीं चलता । लेकिन ऐसा मालूम होता है कि उसने अपने कुछ वर्ष एकान्तवास और तपश्चर्यामें बिताये थे।

वह कफ़नी या जामेके ढंगका ऊँटके बालसे बना एक वस्त्र पहनता था, और उसे कमरके पास चमड़ेके पट्टेसे बाँधे रहता था । वह 'लोकस्ट' नामक नाज* और जंगली शहद खाकर रहता था'।

कोई तीस वर्षकी उम्रमें योहानने उपदेश करना शुरू किया । वह अपने शिष्यों पर पानी छिड़ककर उन्हें दीक्षा (बॅप्टीज़्म) देता था ।

उपदेश

इसलिए लोग उसे दीक्षा देनेवाले योहानके नामसे पहचानते थे । उसकी सादगी, निष्किंचनता, पवित्रता, और स्पष्ट वक्तृतासे आकर्षित होकर बहुतेरे लोग उसका उपदेश सुननेको इकट्ठा होते थे, और बहुतसे लोग उसके शिष्य भी बने थे । उसके उपदेशकी मुख्य ध्वनि यह रहती कि धर्मराज्यकी स्थापनाका समय निकट आ लगा है; यानी अब जनताको अपने पापोंके लिए पश्चात्ताप

---

* अंग्रेजीमें 'लोकस्ट' शब्दका अर्थ टिड्डी भी होता है । इसके कारण कई हिन्दुस्तानी पाठक यह सोचते हैं कि योहान टिड्डियोंका आहार करता होगा । लेकिन यह एक दूसरा ही शब्द है । बबूल और खैरकी जातिके पेड़ोंकी फलियाँ भी 'लोकस्ट' कहलाती हैं ।

करके चित्तशुद्धि करनी चाहिये। मिथ्या कुलाभिमान, जात्यभिमान और पांडित्याभिमान पर वह कड़े प्रहार करता था। इसके कारण फैरिसी, सैडयूसी और पुजारी आदि उससे नाराज़ रहने लगे थे। लेकिन आमजनता उसके उपदेशोंको श्रद्धापूर्वक सुनती थी, और उसे प्राचीन पैग़म्बर+ एज़ायाहका अवतार मानती थी।

इस समय पहले प्रकरणमें उल्लिखित राजा हेरोदका पुत्र दूसरा हेरोद गादी पर था। उसने अपने भाईकी विधवाके साथ विवाह कर लिया था। यहूदियोंमें भाभीके साथ विवाह करना निषिद्ध है।

मृत्यु

एक बार राजाने योहानको आमंत्रित किया और इस सम्बन्धमें उसकी राय पूछी। योहानने राजाके इस कार्यकी निन्दा की। इससे नाराज़ होकर उसकी रानीने योहानको बन्दीगृहमें भेज दिया। एक अरसे तक वह क़ैदमें पड़ा सड़ता रहा। इसके बाद एक दफ़ा हेरोदकी लड़कीने हेरोदको उसके जन्मदिन पर अपने नृत्यसे ख़ुश किया। हेरोदने लड़कीसे इनाम माँगनेको कहा। माँके सिखानेसे उसने इनाममें योहानका सिर माँगा। वचनबद्ध (!) राजाने योहानका शिरच्छेद करवाया। इस प्रकार इस सत्पुरुषका क्रूर अन्त हुआ।

+ **पैग़म्बर और ख्रिस्त :** ख्रिस्ती धर्ममें इन दोनोंके बीच भेद माना जाता है। पैग़म्बरका अर्थ है, ईश्वरका पैग़ाम या संदेश सुनानेवाला। ख्रिस्तका अर्थ अभिषिक्त होता है। हिब्रू भाषामें इसके लिए मेसायाह (मसीहा) शब्द है। अपनी भाषामें हम इसे युवराज कह सकते हैं। साधना द्वारा ज्ञानप्राप्त मनुष्यमें और स्वयंभू या जन्मजात ज्ञानीमें जो भेद है, वैसा ही कुछ भेद ऊपरके इन दो शब्दोंमें है। अलबत्ता, किसीको परमेश्वरका अवतार माननेकी तरह किसीको ख्रिस्त मानना भी मात्र शब्दप्रमाण पर श्रद्धा रखनेका विषय है।

३

ईशुका जन्म और साधना

माना जाता है कि योहानके जन्मके कोई छः महीने बाद ईशुका जन्म हुआ। ईशुकी माँ मारिया (मेरी)की सगाई योसेफ नामक एक नौजवान बढ़ईके साथ हुई थी। वह यरुशालेमके समीप बेथलेहेम नामक गाँवका निवासी था। मेरीका नैहर गैलिली तहसीलके नेज़ेरेथ गाँवमें था, और योसेफ भी अपने धन्धेके सिलसिलेमें वहीं जा बसा था। चूँकि इनका विधिवत् विवाह होनेसे पहले ही ईशुका जन्म हो चुका था, इसलिए मेरीको लोग 'कुमारी माता मेरी' कहते हैं। इस विचारसे कि ईशुके जन्मकी टीप अपने ही वतनमें रहे, योसेफ और मेरी उसके जन्मसे पहले बेथलेहेम आ गये थे। कहा जाता है कि वहाँ एक सरायमें दिसम्बरकी २४-२५ तारीख़ (बड़े दिन)को आधी रातके समय ईशुका जन्म हुआ था। कृष्णाष्टमीकी मध्यरात्रिकी तरह ख्रिस्तियोंमें यह दिन एक बड़े-से-बड़े पर्वके रूपमें मनाया जाता है।

जन्म

जिस प्रकार श्रीकृष्णके विषयमें एक पौराणिक कथा है कि कंसने आकाशवाणी सुनकर कृष्णको मरवा डालनेके लिए पूतनाको भेजा था, और गोकुलके सभी बालकोंको मरवा डाला था, उसी प्रकार ईशुके बारेमें भी कहा जाता है कि हेरोदको उसके ज्योतिषियोंने कहा था कि उसका शत्रु बेथलेहेममें उत्पन्न हो चुका है। इस परसे सशंक होकर हेरोदने उस गाँवके दो वर्षसे कम उम्रके सभी बच्चोंको मरवा डाला था। लेकिन योसेफको हुक्मकी तामील होनेसे पहले इसका पता चल गया, और वह माँ और बच्चेके साथ नेज़ेरेथ भाग गया।

बचपन

इसके बादके बारह वर्षों तक ईशुके सम्बन्धकी कोई बात मालूम नहीं होती। क़रीब बारह वर्षकी उम्रमें वह अपने माता-पिता और छोटे भाई-बहनोंके साथ पेसाह (उद्धार) पर्व पर यरुशालेम गया था। पूजापाठसे निपटकर योसेफ और मारिया बच्चोंको लेकर गाँववालोंके साथ वापस लौटे। कुछ दूर जाने पर मालूम हुआ कि ईशु उनके साथ नहीं है। यह सोचकर कि वह संघके दूसरे आदमियोंके साथ होगा, माता-पिताने सारे दिन उसकी कोई चिन्ता न की। लेकिन जब शाम पड़ने पर भी वह कहीं दिखाई नहीं पड़ा, तो वे वापस यरुशालेम पहुँचे और मन्दिरमें पूछताछ करने लगे। वहाँ उन्होंने देखा कि ईशु मन्दिरमें बैठा शास्त्रियोंके साथ धर्म-चर्चा कर रहा है, और कठिन प्रश्नोत्तर द्वारा सबको आश्चर्यमें डाल रहा है। लेकिन मालूम होता है कि माता-पिताको ईशुका यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। पीछे रह जाने और सबका साथ गँवाने के लिए मारियाने ईशुको बुरा-भला कहा। ईशु उनके साथ वापस घर आया।

ऐसा मालूम होता था कि बचपन हीसे ईशुका मार्ग उसके कुटुम्बियोंके मार्गसे भिन्न था! सम्भव है कि रिश्तेदारों और गाँववालोंको ईशु कुछ अजीब और अव्यावहारिक लगा हो।

तपश्चर्या

इस घटनाके बादके क़रीब १८ वर्षोंकी कोई हक़ीक़त ईशुके बारेमें कहीं लिखी नहीं मिलती। मालूम होता है कि उसने यह समय आध्यात्मिक चिन्तनमें बिताया होगा। कहा जाता है कि कोई तीस सालकी उम्रमें उसने योहानसे दीक्षा ली थी। उसके बाद चालीस दिन तक एक पहाड़ पर रहकर उपवास-पूर्वक प्रार्थना करनेका उल्लेख मिलता है। अनुमान किया जाता है कि इस तपस्याके परिणाम-स्वरूप उसे धर्मतत्त्वका बोध हुआ और कुछ सिद्धियाँ भी प्राप्त हुईं। उसके मनमें एक प्रकारके आत्मविश्वासके साथ ईश्वरनिष्ठा दृढ़ हुई और सांसारिक लाभ-हानि तथा सुख-दुःखोंका विचार न करते हुए जो सत्य प्रतीत हो, उसे संसारके कल्याणके लिए कहने और करनेकी हिम्मत पैदा हुई। फिर भी जब-जब दुनियाके विरोधों और संकटोंसे मनके दुर्बल होनेकी सम्भावना खड़ी होती, वह पहाड़ आदि किसी स्थानमें

एकान्तवास करके अपनी साधनाकी पुनरावृत्ति करता और अपनी ईश्वर-निष्ठाको तेजस्वी बनाता था।

माना जाता है कि ईशुको नीचे लिखी सिद्धियाँ प्राप्त थीं : स्पर्श

सिद्धियाँ — या वचन-मात्रसे रोग आदिका निवारण करना, भोजनके पात्रको अक्षय बनाना, उपद्रवोंको रोकना, और पानी पर चलना, आदि-आदि।

टिप्पणी

चमत्कार — प्राचीन समयके सन्तोंके जीवनचरित्र चमत्कारोंके वृत्तान्तोंसे भरे मिलते हैं। अज्ञान जनता और व्यावहारिक दृष्टिसे बुद्धिशाली किन्तु सांसारिक तृष्णाओंमें रचे-पचे लोग चमत्कारकी शक्तिको ईश्वर-दर्शनका एक आवश्यक लक्षण समझते हैं। धन-लोलुप राजा चमत्कार न दिखानेवाले साधुओंको ढोंगी कहते और उन्हें सताते भी थे। चमत्कारोंकी लोकविश्रुत बातोंमें कितनी सचाई होती है, इसका निर्णय करना कुछ ही दिनोंमें कठिन हो जाता है; क्योंकि बातोंकी यह लता इतने वेगसे बढ़ती है, और बादमें इसके फल इतने विविध और रसपूर्ण बताये जाते हैं कि असलमें उसका कहीं सिर-पैर भी है या नहीं, यही एक सहज शंकाका विषय बन जाता है।

यह सोचना कि चमत्कारोंकी बातें बिलकुल मिथ्या हैं, घोर अश्रद्धाका सूचक है। चमत्कारकी हरएक बातमें विश्वास कर लेना अन्धश्रद्धाको परिसीमा है। सन्तों द्वारा सत्य, अहिंसा आदि यमोंके पालन और अपरिमित मैत्री एवं करुणाके सहज परिणाम-स्वरूप कुछ चमत्कार प्रकट हो जाते हैं; कुछ योगाभ्यासकी सिद्धिके परिणाम होते हैं; कुछ भावुकोंकी श्रद्धाके कारण घटित हो जाते हैं; और कुछ अन्धश्रद्धालु लोगोंकी भ्रमणाके ही परिणाम होते हैं। इसके सिवा, बादमें आनेवाले अनुयायियोंकी कल्पनाशक्ति भी कुछ चमत्कारोंका आविष्कार कर लेती है। इनमेंसे पहले दो प्रकारके चमत्कारोंमें सत्यका अंश हो सकता है।

चमत्कारोंकी ये बातें सत्य हों या असत्य, इसमें सन्देह नहीं कि ईश्वरमय जीवनका यह कोई आवश्यक लक्षण नहीं। उलटे, सन्त स्वयं तो चमत्कारोंको अरुचिकी दृष्टिसे ही देखते हैं। शुरूमें चमत्कार दिखानेकी

वृत्ति कभी रहती भी है, तो धीरे-धीरे वह गौण होती जाती है, और अन्तमें बिलकुल नष्ट हो जाती है। प्रत्येक साधु पुरुषके जीवनका अभ्यास करनेसे इस कथनकी सचाईका पता चलता है। अपने द्वारा होनेवाले या अपनेमें आरोपित किये जानेवाले चमत्कारोंके प्रति सन्तोंके मनमें कोई मोह नहीं रहता; उनकी आन्तरिक वृत्ति तो यही होती है कि ये चमत्कार बन्द हो जायँ। कारण इसका स्पष्ट है। अन्धेको आँखें दे देने और लँगड़ेको चलता कर देने अथवा दो रोटियोंसे दोसौ आदमियोंका पेट भर देने और रेगिस्तानमें पानी बहा देनेसे आखिर होता क्या है? इन चमत्कारोंके कारण मिलनेवाला सुख स्थायी नहीं होता। यह भी विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि जिसे यह सब प्राप्त होता है, वह जीवनमें शान्तिका अनुभव करता या पुण्यशील बनता है। मरे हुए को जिलाने पर भी आखिर उसे मरना तो पड़ता ही है। सन्तोंको ऐसा सुख देनेमें दिलचस्पी क्यों हो? अगर कोई ऐसी करामात हो कि जिससे पापी पुण्यशाली, तृष्णावान वैराग्यशील, लोभी संतोषी और विषयी तुरन्त निष्काम यानी कामवासनाहीन बन सकें, तो सन्त उस सिद्धिको सहर्ष स्वीकार कर लें। लेकिन इन वृत्तियोंके निर्माणका कोई चमत्कारिक उपाय सन्तोंको अभी तक प्राप्त नहीं हो पाया है। इस सम्बन्धमें तो सन्त केवल खाद और पानीका ही काम कर सकते हैं। जहाँ ये वृत्तियाँ बीज-रूपमें मौजूद होती हैं, वहाँ वे इनका पोषण कर सकते हैं, इन्हें बढ़ा सकते हैं; सुपात्र क्षेत्रमें इनके बीजको बो भी सकते हैं। लेकिन जहाँ यह वृत्ति ही न हो, और क्षेत्र भी अनुकूल न हो, वहाँ उनका कोई उपाय नहीं चलता। यही सोचकर साधु पुरुष दूसरे चमत्कारोंके प्रति उदासीन रहने लगते हैं। ईशु खिस्तका जीवन भी इसीकी साक्षी देता है।

चूँकि चमत्कार अवतारोंके अवतार-कृत्यका कोई आवश्यक अंग नहीं होता, इसलिए इस चरित्रमें उसका समावेश नहीं किया गया है। जो आदमी चमत्कारोंकी बात सुनकर ही किसीको अवतारी पुरुष मानता है, वह अवतारित्वका रहस्य ही नहीं समझता।

४

प्रवृत्ति — १

मालूम होता है कि अपनी प्राथमिक साधना समाप्त करनेके बाद ईशुने धीमे-धीमे उपदेश-कार्य शुरू किया था। योहानकी भाँति उसके

उपदेश और चमत्कार

आरम्भिक उपदेश भी पापके लिए अनुताप करने, जीवनको पवित्र बनाने और प्रेमपूर्वक ईश्वरकी भक्ति करनेके लिए होते थे। वह लोगोंको समझाता था कि जब तक शास्त्रों पर जमी हुई जड़ श्रद्धा न मिटेगी, धर्मके नाम पर किये जानेवाले पाखण्डका नाश न होगा, क्षणिक लाभके लिए दूसरोंको हानि पहुँचाने आदिकी वृत्ति नष्ट न होगी, तब तक मनुष्यकी उन्नति न हो सकेगी। इसके साथ ही वह शुरूमें रोगियोंको स्वस्थ, अंधोंको आँखवाला, बहरोंको सुननेवाला, गूँगोंको बोलनेवाला बनाने और मृत प्रतीत होनेवालोंको जिलाने आदिके चमत्कार भी करता था। इससे उसकी कीर्ति गाँव-गाँव फैल गई और लोगोंके दल-के-दल उसके उपदेशोंको सुनने आने लगे।

योहानसे दीक्षा लेनेके कुछ ही बाद पेसाह पर्व आ पहुँचा। इस अवसर पर रिवाजके मुताबिक़ वह यरुशालेम गया। इस बार ईशुने

मंदिर शुद्धि

यरुशालेममें एक ऐसा काम किया, जिससे पुजारी-वर्ग उसे अपना दुश्मन समझने लगा। मंदिरका एक हिस्सा वे दुकानदारोंको दुकान लगानेके लिए किराये पर उठा दिया करते थे। इसके कारण मंदिरका वह भाग एक बाज़ार-सा बन जाता था। तीर्थस्थानका इस तरह बाज़ार बन जाना ईशुसे सहा न गया। उसने लोगोंको निकाल बाहर किया। जब कुछ लोगोंने पूछा: "तुम किस अधिकारसे ऐसा करते हो?" तो उसने कहा: "अगर तुम इस मन्दिरको तोड़ डालो, तो मैं तीन दिनमें नया मन्दिर बनानेकी ताक़त रखता हूँ।" (अर्थात् इन लोगोंको निकाल बाहर करनेका मेरा यही अधिकार है।) भावार्थ इसका यह था कि मन्दिर ईश्वरके भक्तोंका

है, और प्रत्येक भक्तको अधिकार है कि वह मन्दिरको पाप-मुक्त करे। ईंट और चूनेकी बनी इमारत मन्दिर नहीं होती। उसके अन्दर सुरक्षित रक्खी जानेवाली पवित्रता ही मन्दिर है। इमारतके नष्ट हो जाने पर भक्त अपने हृदयकी पवित्रताके मसालेसे तत्काल दूसरा मन्दिर खड़ा कर सकता है। लेकिन पुजारियोंने इन शब्दोंको मन्दिरके घोर तिरस्कारका सूचक माना और ईशुके विरुद्ध लगाये गये अभियोगोंमें यह एक महत्त्वका अभियोग बना।

शुरूमें ईशुने यहूदिया तहसीलमें उपदेश करना प्रारम्भ किया। योहान भी इसी तहसीलमें उपदेश करता था। दोनोंकी हलचलें यहूदियोंमें नया जीवन पैदा कर रही थीं। जब किसी दबी हुई प्रजामें नवजीवन उत्पन्न होता है, तो शासकवर्ग और पुराणप्रिय वर्गके लोग घबरा उठते हैं। ईशुके चमत्कारोंने इस घबराहटको और भी बढ़ाया। मालूम होता है कि शुरूमें तो ईशुने सिर्फ़ यहूदियोंके अन्दर काम करनेका विचार किया था, लेकिन बादमें उसकी दृष्टि विशाल बनती गई, और उसे यह भी अनुभव हुआ कि ग़ैरयहूदियोंमें उसके उपदेशोंको अधिक आदरके साथ सुननेकी उत्सुकता थी। फलतः आगे चलकर वह सभी जातियोंको बिना किसी भेद-भावके दीक्षा देने लगा। वह और उसके शिष्य यहूदियोंके कर्म-काण्डका बहुत खयाल नहीं रखते थे। विधिवत् व्रत (उपवास) रखने, शब्बाथ (विश्रान्तिदिन)का पालन करने और हाथ-पैर धोकर खाने आदिके मामलोंमें वे प्रायः नियमोंका भंग करते। 'दानियों'से और नीच मानी जानेवाली जातियोंसे वे बिना भेद-भावके मिलते-जुलते थे और उनके हाथका खाते-पीते थे। फिर, फैरिसी वग़ैराके बारेमें ईशु बहुत कड़ुई और फटकारभरी भाषाका उपयोग करता था, जिससे फैरिसियों, शास्त्रियों और पुजारियों आदिका क्रोध उस पर दिन-दिन बढ़ता जाता था।

विरोध वृद्धि

यहूदियोंमें राजाका और पुजारियोंका विरोध बढ़ता देखकर ईशुने गैलिली जाना उचित समझा। बीचमें सैमारिया तहसील पड़ती थी। यहूदियोंकी दृष्टिमें यह तहसील और इसकी जनता इतनी अपवित्र थी कि वे गैलिली जाते समय सैमारिया होकर जानेके बदले या तो समुद्रके मार्गसे जाते थे या लम्बा

सैमारियामें

चक्कर काटकर दशनगर तहसील परसे जाते थे। सैमारियाकी जनता असलमें तो यहूदी ही थी। लेकिन वह अपनी तहसीलके गेरीज़िम पर्वतको यरुशालेमसे भी बड़ा तीर्थ मानती थी, और यहूदियोंको यह अच्छा नहीं लगता था। किन्तु ईशुके मनमें ऐसी घृणा कैसे हो सकती थी? उसने सैमारियाके रास्ते ही जाना पसंद किया और उस तहसीलके लोगोंको अपना उपदेश भी सुनाया।

सैमारियानीकी शुद्धि

एक दिन वह एक कुएँ पर बैठा था। उसके दो तीन शिष्य गाँवमें खाना लानेके लिए गये थे। ईशुको प्यास लगी थी। इतनेमें एक स्त्री कुएँ पर पानी भरने आई। ईशुने उससे पानी माँगा। एक यहूदीको सैमारियानीके हाथका पानी पीनेके लिए तैयार होते देख उसने आश्चर्य प्रकट किया। ईशुने उससे कहा: "बाई, अगर तू मुझे पहचान सके, तो जो भौतिक जीवन* मैं तुझसे माँगता हूँ, उसके बदलेमें तू मुझसे दिव्यजीवन माँग सकती है।" स्त्रीने ईशुको अपनी बात अधिक स्पष्टताके साथ समझानेको कहा। तब ईशुने उसे उपदेश देते हुए कहा कि ईश्वर बाहरी तीर्थों और मंदिरोंमें नहीं, बल्कि हृदयमें पूजा जाता है; ईश्वरका प्रेमरस पीनेसे मनुष्यका जीवन उन्नत बनता है, और उसे अनन्त जीवनका अधिकार प्राप्त होता है। यह सुनकर उस स्त्रीने ईशुसे दीक्षा ली। उसका पूर्वजीवन अपवित्र था, लेकिन दीक्षाके बादसे वह पवित्रतापूर्वक रहने लगी।

सन्तोंकी उपासना

जो आदमी अपने जीवनमें ग़लतियाँ करके पाप-पथका राही बन जाता है, आम जनता उसे तिरस्कारकी दृष्टिसे देखती है। उसकी सोहबत करना तो दूरकी बात है, प्रायः एक प्राणीके नाते उस पर दया करना भी लोग उचित नहीं समझते। और, जो कोई उसकी ओर दया-दृष्टिसे देखता है, उस पर भी नाना प्रकारके अत्याचार किये जाते हैं। और सर्व साधारणकी ईश्वर-विषयक भावना कुछ ऐसी होती है कि जिस तरह

---

* जीवन = पानी

राजा दुष्टोंको दण्ड देता है, उसी तरह राजदण्डसे बचे हुए लोगोंको ईश्वर दण्ड देता है। उनके विचारमें परमेश्वर पापियोंको सज़ा देनेवाला है। यमपुरीको वे परमेश्वरका बड़ा — और परमेश्वरकी महानताके प्रमाणमें भयंकर — क़ैदखाना मानते हैं। इस न्यायके कारण आम तौर पर लोग पापीका बहिष्कार करने और उसे दण्ड देने-दिलानेमें धर्म समझते हैं। सन्तोंके विचार इससे भिन्न होते हैं। सन्त ईश्वरको अपनी भावनावश पतितपावन, अधमोद्धारक, दीनबन्धु और करुणासागरके रूपमें देखना चाहते हैं, और उनकी उपासनाके अनुसार स्वयं उनमें भी ये गुण प्रकट होते हैं। इसलिए शुरूसे नीति पर आरूढ़ रहनेवालोंकी अपेक्षा जिनसे ग़लतियाँ हुई हैं, पाप हुए हैं, उनके प्रति उनकी दया और करुणाका प्रवाह विशेष वेगसे बहता है। सन्त किसीको दण्ड देने या दिलानेकी इच्छा नहीं रखते। जिससे पाप हुआ है, उससे बढ़कर दया-पात्र और कौन हो सकता है? और जो दयाका पात्र है, उसे दण्ड कैसा? उसे तो क्षमा और प्रेमसे सुधारनेकी ज़रूरत है। यह ख़याल कि कोई देश, कोई प्रजा, कोई जाति या कोई धंधा अपवित्र है, शास्त्र और ज्ञानका अधिकार उसे नहीं, एक ग़लत ख़याल है, और प्रायः किसी समय भोगे हुए बड़े-चढ़े ऐश्वर्यके मदका परिणाम होता है। सत्पुरुषोंको ये विचार मान्य नहीं हो सकते। उनकी दृष्टिमें पतित-पावनता परमेश्वरकी महिमाके साथ अविकल रूपसे जुड़ी हुई है, और इसलिए वे भी पतितोंके प्रति हमेशा करुणा लिये रहते हैं।

"अजामील, गीध, व्याध, इनमें कहो कौन साध?
पंछीको पद पढ़ात, गनिकासी तारी।"

सन्तोंकी कृपासे पावन बने हुए पतितोंकी ऐसी नामावली हमारे देशके भजनोंमें पाई जाती है। इनमें वाल्मीकि आदि अन्य अनेकोंके नाम बढ़ाये जा सकते हैं।

हमारे अनेक सन्तोंने यह गाया है कि वर्ण और जातिके साथ उद्धारका कोई संबंध नहीं। तुकाराम महाराजने नीचे लिखे अभंगमें हीन जातिके भक्तोंकी नामावली ही दे रक्खी है:

पवित्र तें कुळ पावन तो देश जेथें हरिचे दास जन्म घेती ।
कर्मधर्म त्याचे जाला नारायण त्याचेनि पावन तिन्ही लोक ।
वर्ण अभिमानें कोण जाले पावन ? ऐसें द्या सांगून मजपाशीं ।
अंत्यजादि योनि तरल्या हरिभजनें तयांचीं पुराणें भाट झालीं ।
वैश्य तुळाधार गोरा तो कुंभार धागा हा चांभार रोहिदास ।
कबीर मोमीन लतिफ मुसलमान सेना न्हावी आणि विष्णुदास ।
कान्होपात्र खोदु पिंजारी तो दादु भजनीं अभेदु हरिचे पायीं ।
चोखामेळा बंका जातीचा महार त्यासी सर्वेश्वर ऐक्य करी ।
नामयाची जनी कोण तिचा भाव ? जेवी पंढरीराव तियेसवें ।
मैराळ जनक कोण कुळ त्याचें ? महिमान तयाचें काय सांगो ।
यातायातिधर्म नाहीं विष्णुदासा निर्णय हा ऐसा वेदशास्त्रीं ।
तुका म्हणे तुम्हीं विचारावे ग्रंथ तारिले पतित नेणों किती ।

सैमारियासे ईशु गैलिलीके अपने गाँवमें पहुँचा । वहाँ उसने एक मंदिरमें एक उपदेश किया । लोगोंसे उसने विनयपूर्वक कहा कि वे ईश्वरके राज्यका संदेश सुनें, और पवित्रतापूर्वक उस राज्यके अधिकारो बनें । लेकिन लोगोंको यह सहन न हुआ कि उनके मुँह सामनेका छोकरा उनके सम्मुख सयानोंकी-सी बातें करे, और मारियाका लड़का अपनेको ईश्वरका पुत्र* कहलाये । वे ईशुको मारने दौड़े और उसे खदेड़कर गाँव बाहर कर दिया । ईशुने सोचा, 'साधु अपने घरमें पूजा नहीं जाता', इसलिए वह कैपरनाउम चला गया और कुछ दिन वहाँ रहा ।

नैज़ेरेथमें

यहाँ दो-तीन शिष्य उससे बहुत प्रेम करनेवाले थे । उसने इस गाँवमें कई चमत्कार भी कर दिखाये थे, और उसका सबसे पहला शिष्य साइमन उर्फ़ पिटर इसी गाँवका निवासी था । कैपरनाउमसे पिटर, उसका भाई और दूसरे दो शिष्य ईशुके हमेशाके साथी बने । इन भाइयोंके साथ रहकर ईशुने सारी गैलिली तहसीलमें उपदेश करने और रोग मिटानेका काम किया ।

कैपरनाउममें

* 'ईश्वरका पुत्र' शीर्षक टिप्पणी देखिये ।

कुछ महीनों बाद फिर यहूदियोंका एक पर्व आया। उस समय ईशु फिर यरुशालेम गया। इससे पहले ही ईशुकी प्रशंसामें यह कहा जाने लगा था कि वह चमत्कारिक ढंगसे रोगोंका निवारण करता और भूत-प्रेतको निकाल भगाता है। यही वजह थी कि उसके दर्शनोंके लिए लोगोंकी भीड़-की-भीड़ और रोगियोंके दल-के-दल उसके आसपास इकट्ठा होते थे।

पुनः यरुशालेममें

यरुशालेमके मन्दिरके नज़दीक एक कुण्डके पास ईशु बैठा था, इतनेमें एक ऐसा रोगी उसके पास आया, जिसे ३८ साल पुराना लकवेका रोग था। ईशुने अपने वचन-बलसे उसे चंगा कर दिया और कहा कि जाओ, अपनी चारपाई उठाकर घर लौट जाओ। यह दिन विश्रान्तिका दिन था। यहूदियोंको अब यह कहनेका एक अच्छा प्रमाण मिल गया कि ईशु विश्रान्ति-दिनको मानता नहीं है, वह नास्तिक है। रोगीको नीरोग बनानेका एक बड़ा पाप तो उसने किया ही, तिस पर उसे चारपाई उठाकर ले जानेको कहा — यानी काम करनेको कहा — यह तो पापकी हद हो गई। इसके सिवा, विश्रान्ति-दिवसका विधिवत् पालन न करनेके दूसरे भी अभियोग उस पर और उसके शिष्यों पर थे। लोगोंने ईशुसे इस धर्मभंगके लिए जवाब तलब किया। ईशुने कहा: "परमेश्वर दयाके काम प्रतिक्षण किया करता है, अतएव दयाके कार्योंके लिए ईश्वरके पुत्र पर विश्रान्ति-दिनका कोई प्रतिबन्ध नहीं हो सकता।" इस प्रकार ईशु बार-बार अपनेको ईश्वरका पुत्र कहता था। लेकिन एक स्त्रीके उदरसे उत्पन्न दो पैरोंवाला आदमी इस तरह ईश्वर-पुत्र होनेका दावा करे, इसे यहूदी लोग नास्तिकता और निर्लज्जताका लक्षण मानते थे। उनका कहना यह था कि ईश्वरका पुत्र हाड़-मांसके शरीरवाला नहीं हो सकता, वह माँके पेटसे जन्मा हुआ नहीं हो सकता, वह ग़रीबके घर जन्म नहीं ले सकता, वह तो सिंहासन पर बैठनेवाला होता है।

इसके सिवा, जब कोई पापी आदमी ईशुके सम्मुख आकर पश्चात्ताप करता, तो 'तेरे सब पाप भस्म हो चुके हैं,' कहकर ईशु उसे आश्वस्त करता। पुजारी सोचते कि ईश्वरके नाम पर पापोंको माफ़ करनेका ईशुको क्या अधिकार है? इस प्रकार ईशुके प्रति उनका द्वेष दिनों-दिन बढ़ता जाता था।

धीरे-धीरे ईशुके अन्तेवासी शिष्योंकी संख्या बढ़कर बारह हो गई।

शिष्य-मण्डल

इनमें येहूदा (Judas)का नाम याद रखने योग्य है, क्योंकि इसी आदमीने ईशुको दग़ा देकर मरवा डाला था। ये बारह शिष्य ईशुके बारह साधुओंकी तरह थे।

इस प्रकार ईशुका उपदेश-कार्य चला। कई लोग उसके वक्तृत्वसे आकर्षित होकर उसे सुनने आते थे, लेकिन अधिकांश तो अपना रोग मिटानेके विचारसे ही उसके पास पहुँचते थे। स्वयं

उपदेशका प्रभाव

ईशुने भी अनुभव किया कि लोगोंमें अपने शारीरिक रोगोंसे मुक्त होने और ऐहिक राज्य पानेकी लालसा ही तीव्र है; कोई उससे आत्मशुद्धिका औषध लेना नहीं चाहता। लोग अपनी ग़रीबी मिटाने और रोगोंसे मुक्त होनेको तो आतुर थे, लेकिन किसीको अपने पाप धोने या विकार नष्ट करनेकी चिन्ता न थी। ईशुको इससे बड़ा खेद होता था। उसे यहूदियोंका भविष्य बहुत धुँधला नज़र आता था। फैरिसियों और शास्त्रियोंसे उसे यह शिकायत रहती थी कि वे लोगोंको जड़ और अन्धश्रद्धालु बनाये रखते हैं। मालूम होता है कि फैरिसियों और शास्त्रियों पर उसके प्रहार बड़ी कड़ुई वाणीमें प्रकट होते थे। इस कड़ुआहटके पीछे हृदयमें दाह और दयाका जो झरना बहता रहता था, उसकी क़द्र करनेवाला कोई न था। अधिकारियोंको उसकी हलचलोंमें राज्यद्रोह, धर्मद्रोह, नास्तिकता, निर्लज्जता और आत्मप्रशंसाकी बू आती थी; तो कुछ ऐसे लोग भी थे, जो उसे भावुक और पागल समझते थे। मालूम होता है कि ईशुकी भाषा राज्यकर्त्ताओंकी भाषाका अनुसरण करती थी। लेकिन बहुत संभव है कि अपनी पूर्वमान्यताओंके कारण यहूदियोंको ईशुकी भाषा ऐसी प्रतीत होती हो। यहूदी युवक स्वराज्यके लिए आतुर थे और ईशु धर्मराज्यका उपदेश करता था; नवयुवक यहूदियोंके दण्डधारी राजाके अवतारकी बाट जोह रहे थे। ईशु उन्हें धर्मराजाके अवतारके आगमनकी बात कहता था। शायद इसीलिए उसकी भाषा राजनीतिसे मिली-जुली रहती हो।

उपदेश-पद्धति

ईशु अपने भाषणोंमें दृष्टान्त और कहानियाँ सुनाकर लोगोंको उपदेश देता था। कहानियों द्वारा वह ऊँचे-से-ऊँचे आदर्शों और सिद्धान्तोंको सरलतासे समझा सकता था। उसके कुछ दृष्टान्त आगे दिये गये हैं।

टिप्पणी

ईश्वरका पुत्र : ईशु अपना परिचय ईश्वर-पुत्र और मानव-पुत्र दोनों नामसे देता था। शब्द-सेवी ख्रिस्तियोंका विश्वास है कि ईशु परमेश्वरका अपना इकलौता पुत्र और उसका अभिषिक्त (ख्रिस्त या मेसायाह) युवराज था। उनके विचारमें, ऐसी श्रद्धा न रखना ईशुके प्रति अनास्था रखनेके समान है। स्थूल दृष्टिसे वह मानव-पुत्र भी था। यहूदियोंको और इस्लामको यह शब्दार्थ मान्य नहीं। और यह स्वाभाविक है; क्योंकि यह मान्यता परमेश्वरके स्वरूप-संबंधी अज्ञानकी सूचक है। भावार्थ-सेवी ख्रिस्ती पुत्रका अर्थ प्रतिनिधि करते हैं। ख्रिस्ती विद्वान् मुझसे कहते हैं कि पुराने इकरारमें (बाइबलके यहूदी-मान्य भागमें) पुत्रका ऐसा अर्थ करनेके लिए आधार मिलता है। इस अर्थके अनुसार उक्त दो उपाधियोंका भावार्थ यह होता है कि वह इस संसारमें ईश्वरका प्रतिनिधि था और (एक आदर्श मनुष्यके नाते) मानवजातिका भी प्रतिनिधि था।

९

प्रवृत्ति — २

पतित या पथभ्रष्ट स्त्रियों पर ईशुके उपदेशका कितना प्रभाव पड़ता था, और उसके हृदयमें उनके प्रति कितनी करुणा उमड़ा करती थी, इसका एक दृष्टान्त यह है :

पतित-पावनता

एक बार एक फैरिसीने ईशुको अपने यहाँ भोजनके लिए निमंत्रित किया। ईशु निमंत्रण स्वीकार करके उसके यहाँ भोजन करने गया। जब सब बैठे भोजन कर रहे थे, तभी एक हलका धन्धा करनेवाली स्त्री वहाँ आई और अपने आँसुओंसे ईशुके चरण धोने लगी। फिर अपने बालोंसे उसने ईशुके पैर पोंछे और उन पर सुगंधित द्रव्यका लेप किया। यह सब देखकर यजमानके मनमें शंका उत्पन्न हुई। उसने सोचा : यह ईशु पैग़म्बर माना जाता है, लेकिन अगर यह सच्चा पैग़म्बर होता, तो इसे पता चल जाता कि इस स्त्रीका चाल-चलन कैसा है, और यह इसे अपना पैर छूने न देता। ईशु अपने मेज़बानके हृदयकी इस कुशंकाको ताड़ गया। उसने उसे समझानेके विचारसे कहा :

कुलटाका उद्धार

"सायमन, मान लो कि एक आदमीके दो कर्ज़दार हैं। एकसे उसे पाँचसौ लेने हैं और दूसरेसे पचास। अगर वह दोनोंको कंगाल बना जानकर उन्हें माफ़ करे, तो उनमें कौन उसका अधिक कृतज्ञ होगा?" सायमनने कहा : "पाँचसौवाला।"

साहूकारका दृष्टान्त

ईशु बोला : "सच है। अब तुम इस स्त्रीका विचार करो। मैं तुम्हारे घर भोजन करने आया हूँ, लेकिन तुमने मुझे पैर धोनेको पानी तक नहीं दिया। मगर इस स्त्रीने मेरे पैर अपने आँसुओंसे धोये और अपने बालोंसे पोंछे। तुमने मुझे प्रणाम नहीं किया, लेकिन यह स्त्री जबसे आई है, मेरे पैरोंको पकड़े बैठी है। तुमने मेरे भाल पर भी सुगन्धका लेप

नहीं किया, जबकि इस स्त्रीने मेरे पैरको सुगन्धसे चर्चित किया है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि अधिक होते हुए भी इसके पाप सब धुल गये हैं; क्योंकि इसका प्रेम अधिक है। जिसके पाप कम धुले हैं, उसका प्रेम भी कम है।" इसके बाद ईशुने स्त्रीसे कहा: "जाओ बहन, तुम्हारे सब पाप माफ़ हो चुके हैं।"*

नीचेका दृष्टान्त भी ऐसा ही है और इसी पतित-पावन-वृत्तिका द्योतक है:

व्यभिचारिणीको माफ़ किया

एक बार कुछ पुजारी और शास्त्री मिलकर एक स्त्रीको ईशुके पास ले आये। यह स्त्री व्यभिचार करती हुई पकड़ी गई थी। उन्होंने कहा: "मूसाके नियमानुसार इस स्त्रीको पत्थरोंसे मारनेकी सज़ा करनी चाहिये। इस सम्बन्धमें आपकी क्या आज्ञा है?"

वे लोग इस प्रश्न द्वारा ईशुको किसी तरह उसके शब्दोंसे बाँध लेना चाहते थे। लेकिन ईशु इसपर इस तरह चुप रहा, मानों कुछ सुना ही न हो।

यह देख उन्होंने जवाबके लिए बार-बार आग्रह करना शुरू किया। तब ईशुने कहा: "आप लोगोंमेंसे जो नितान्त निष्पाप हो, वह इसे पहला पत्थर मारे।" इतना कहकर वह फिर ज़मीनकी ओर दृष्टि किये बैठा रहा।

ईशुका जवाब सुनकर लोग एक-एक करके उठे और चल दिये; कुछ देरमें वहाँ अकेली वह स्त्री ही रह गई।

यह देखकर ईशुने उस स्त्रीसे कहा: "तुझ पर दोष लगानेवाले कहाँ गये? क्या उन्होंने तुझे कोई सज़ा नहीं दी?"

स्त्री बोली: "नहीं प्रभु।"

ईशुने कहा: "तो अब तू अपने घर जा और आगे कभी पाप न करना।"

फैरिसियोंका द्वेष

लेकिन पंडित ईशुको समझ न सके। उन्होंने सोचा: पापोंको माफ़ करनेकी हिम्मत दिखानेवाला यह उद्धत पुरुष है कौन? इन कारणोंसे ईशुके प्रति उनका द्वेष बढ़ता ही गया।

---

* 'पापोंकी माफ़ी' पर आगे टिप्पणी देखिये।

बारह साथियोंके सिवा अब कुछ स्त्रियाँ भी ईशुके साथ रहने लगी थीं। इन सभी स्त्रियोंका जीवन ईशुके उपदेशसे इतना शुद्ध और पवित्र बन गया था कि जिस समय ईशुको उसके शिष्योंने भी छोड़ दिया था, तब ये स्त्रियाँ ही ईशुके पास खड़ी रही थीं।

शिष्यायें

इसके बाद फैरिसी लोग ईशुके चमत्कारोंके संबंधमें यह कहने लगे कि उसने किसी मलिन विद्याकी सिद्धि की है; वह ईश्वरका दूत नहीं, किसी दुष्ट देवका उपासक है। इसके उत्तरमें ईशु यों कहता: "कोई भी देव या प्राणि अपने हितका विरोधी काम नहीं करता। दुष्ट देव मनुष्योंमें भूतों और आसुरी सम्पत्तिकी प्रेरणा करेंगे, उन्हें निकाल बाहर नहीं करेंगे। यदि मैं मलिन देवका उपासक होऊँ, तो मैं उनकी सहायतासे भूतादिकको निकाल न सकूँ।"

मलिन देवत्वका अभियोग

एक बार ईशुका उपदेश सुनकर एक स्त्रीने कहा: "जिसकी कोखसे ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ है, और जिसकी छातीका दूध इसने पिया है, वह माता धन्य है।" जब दूसरे श्रोता ईशुके उपदेशसे इतने आकर्षित होते थे, तब उसकी माता और भाई यह मानते थे कि ईशुका दिमाग़ खराब हो गया है और वह भूतबाधासे पीड़ित है। इसलिए ईशुने उस स्त्रीसे कहा: "जो मेरे वचनोंको सुनकर उन्हें अपने हृदयमें अंकित कर लेते हैं, वे उससे भी (मेरी मातासे भी) अधिक धन्य हैं।"

माताकी और भाइयोंकी अश्रद्धा

फैरिसियोंका त्रास दिन-दिन बढ़ता ही गया। वे कहने लगे कि ईशुको कोई अग्निपरीक्षा देकर यह सिद्ध करना चाहिये कि वह स्वयं ख्रिस्त है। मालूम होता है कि ईशुको अपने भविष्यका भान होता जा रहा था। वह अस्पष्ट रूपसे कहा करता कि अपनी मृत्यु द्वारा ही वह अपनी परीक्षा देगा।

अग्निपरीक्षाकी माँग

फिर भी उसका काम तो जारी ही था। अब वह अपने शिष्योंको भी उपदेशके लिए भेजने लगा। उसने उन्हें कहा था कि वे अपने साथ लाठी, खाने-पीनेका सामान, पैसा या एकसे अधिक वस्त्र न रक्खें। वे लोग जब वापस लौटते, तो ईशुसे मिलते और अपने कार्यका विवरण उसे सुनाते।

शिष्योंकी बिदाई

एक बार फिर तम्बू-निवास (सुक्कोथ) पर्वके अवसर पर ईशु यरुशालेम गया और मन्दिरमें उपदेश करने लगा। फैरिसी लोग उसके उपदेशका अर्थ ही न समझ पाते थे। ईशु आत्मनिष्ठ था, और आत्मा शब्दका उच्चार किये बिना वह अजर, अमर, सनातनके रूपमें अपना परिचय देता था। उसे सुननेवाले तो उसको साढ़े तीन हाथके एक पुतलेके रूपमें ही देखते थे, और उसीको ईशु समझते थे। इसलिए जब वह कहता: "तुम मुझे ढूँढ़ नहीं सकोगे; जहाँ मैं रहता हूँ, वहाँ तुम पहुँच न सकोगे," तब लोग उसकी बातोंको स्थूल रूपमें ही समझते और सोचते कि वह कहीं भागना या छिपना चाहता है। जब वह कहता: "मैं यहूदियोंके पूर्वजोंसे भी पहलेका हूँ," तो फैरिसी उसे पागल, झूठा, पूर्वजोंका अपमान करनेवाला और नास्तिक समझते। वह जब अपनेको परमेश्वरका पुत्र कहता, तो वे इसे उसकी आत्मप्रशंसा समझते। इन्हीं कारणोंसे ये धर्मान्ध लोग उसपर क्रोध करते और उसे मार डालनेको कटिबद्ध हो जाया करते।

फैरिसियोंकी जड़ता

यहूदिया भारतवर्ष नहीं था। जिस आध्यात्मिक कोटिकी बातें ईशु कहता, उन्हें समझनेकी शक्ति रखनेवाला श्रोतृ समुदाय वहाँ था ही नहीं। ईशुके शब्दोंमें कहें, तो उसके वचनरूपी मोती सुअरोंके आगे बिखरते थे। उस ज़मानेके लोग उसकी आध्यात्मिक स्थितिको समझ नहीं पाते थे, और ईशु उनकी विधियों और रूढ़ियोंका यथाशास्त्र पालन नहीं करता था। उस समयकी वह धर्मान्ध और अन्धविश्वासी प्रजा जब देखती थी कि ईशुके शिष्य विश्रान्ति-दिनका ठीक-ठीक पालन नहीं करते, व्रत-उपवास नहीं रखते, भोजनसे पहले हाथ धोनेका खयाल नहीं रखते, तो उससे धर्म-कर्मकी यह अवगणना सही न जाती थी, क्योंकि उसके विचारमें ये सब बड़े महत्त्वकी बातें थीं, और

प्रजाका रोष

धर्मका आवश्यक लक्षण मानी जाती थीं। इन्हीं कारणोंसे ईशुका प्राण अब प्रतिपल जोखिममें रहने लगा था। फिर भी गैलिलीमें उसे चार-छः महीने घूमनेका अवसर मिल गया था।

हज़ारों लोग ईशुका उपदेश सुनने आते थे, लेकिन उसकी शिष्यता स्वीकारनेकी आतुरता इने-गिनोंमें ही पाई जाती थी। वह भी अब किसीको अपना साथी बनाना नहीं चाहता था। वह कहा करता था कि जो अपना क्रूस स्वयं उठाकर चल सकते हैं, वे ही मेरे साथी बन सकते हैं। वह बार-बार यह सूचित किया करता कि मानवजातिके प्रति अपने प्रेमकी परीक्षा उसे मृत्यु द्वारा ही देनी होगी; लेकिन रात-दिन उसके साथ रहनेवाले उसके शिष्य भी उसे समझ नहीं पाते थे। उनके मनकी गहराईमें यही एक ख़याल छिपा हुआ था कि कभी-न-कभी ईशु यहूदियोंका भौतिक राज्य क़ायम करेगा। इसीलिए वे यह सोचा करते कि जब ऐसा राज्य क़ायम हो जायगा, वे ईशुके दायें-बायें बैठेंगे। जिन लोगोंके साथ ईशु रहता था, उनके और ईशुकी बीच बुद्धिका इतना बड़ा अन्तर था।

शिष्योंकी कमी

टिप्पणी

पापोंकी माफ़ी : ऐसा कौन होगा, जिससे अपने जीवनमें कोई छोटी-बड़ी ग़लती न हुई हो? अगर ग़लतियाँ माफ़ ही न हों, तो संसारमें एक भी प्राणिके उन्नत बननेकी आशा न रह जाय। किन्तु किसी समय मनुष्यका जीवन कितना ही दोषपूर्ण क्यों न रहा हो, तो भी जब उसके हृदयमें अनुतापकी तीव्र ज्वाला सुलग उठती है और प्रेमवृत्तिका उदय होता है, तब उसके लिए शान्तिका द्वार खुल जाता है। ईशुने कुलटाका जो उद्धार किया, और सन्तोंने अजामिल आदिका जो उद्धार किया, उसमें इसी एक चीज़का प्रतिपादन है। अनुतापकी अग्नि और प्रेमका सुहागा हृदयकी समूची मलीनताको भस्म करके उसे शुद्ध कुन्दन-सा बनानेमें समर्थ होते हैं। इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग भी नहीं।

पतित-पावनता सन्तोंका गुण है। आत्मोन्नतिकी साधारण इच्छा रखनेवालेको इसका अनुकरण करते हुए सावधान रहना चाहिये। जब तक अपने हृदयके विकार शान्त न हुए हों, जब तक दुष्ट दर्शन, दुष्ट शब्द और

दुष्ट संगति हृदयमें विकार उत्पन्न कर सकते हों, तब तक सम्भव है कि मनकी दुष्ट वृत्तियाँ ही पतित-पावनताकी मोहक वृत्तिका स्वरूप धारण कर लें; और जब मनुष्य एक बार इस वृत्तिके फन्देमें फँस जाता है, तो वह अधोगतिके किस गड्ढेमें जाकर गिरेगा, कहा नहीं जा सकता। आत्मोन्नतिका क्रम इस प्रकार है:

(१) जब तक हृदयमें विकार उत्पन्न होते हैं, तब तक प्रयत्नपूर्वक सत्संगका सेवन और कुसंगका अतिशय सावधानीके साथ त्याग करना चाहिये।

(२) जब तक दुष्टोंके प्रति अपने आप करुणा उत्पन्न नहीं होती, तब तक उनकी उपेक्षा करनी चाहिये और सज्जनोंके प्रति पूज्य भावना (मुदिता) बढ़ाते रहना चाहिये। जब तक सज्जन पूज्य ही नहीं, बल्कि हमारे एक मात्र प्रिय भी न बन जायँ, तब तक इन वृत्तियोंका पोषण करते रहना चाहिये। जिन लोगोंके प्रति हमारे दिलमें आदर या पूज्यभाव होता है, वे हमेशा हमें प्रिय भी होते हैं, सो नहीं होता। लेकिन जब तक पूज्यको हम प्रिय न बना लेंगे, उसके और हमारे बीच अन्तर बना ही रहेगा। इसलिए पूज्यको प्रिय बनानेकी ओर मनको प्रवृत्त करना चाहिये।

(३) जिस तरह पूज्य व्यक्ति मित्र-भावसे प्रेमपात्र बनता है, उसी तरह दुष्ट और पतित करुण भावसे प्रेमपात्र बनते हैं। उस दशामें पतितके उद्धारका विचारपूर्वक प्रयत्न नहीं करना पड़ता, बल्कि वह स्वभाव ही बन जाता है। जिसका ऐसा स्वभाव बन जाता है, वही सच्चा पतितोद्धारक होता है।

जब तीव्रतम करुणाद्वारा पोषित विशुद्ध प्रेमका प्रवाह हृदयमें प्रवाहित होने लगता है, तब स्पृश्यास्पृश्यताके समान विधि-निषेधों अथवा हिंसा-अहिंसा-सम्बन्धी प्रश्नोंका निर्णय करनेके विषयमें कोई शङ्का ही नहीं रह जाती। कोई स्मृति या शास्त्र इस प्रवाहको रोकनेमें समर्थ नहीं हो सकते। शुद्ध प्रेमका लक्षण यही है कि जिसके प्रति प्रेम होता है, उसकी सेवाके लिए मनुष्य अपने सर्वस्वका त्याग कर देता है। ऐसे समय शरीर, सुविधा, आरोग्य, धन, लोक-लाज, भूख-प्यास और नरकका भय भी मनुष्यको उसके करुणाप्रेरित मार्गसे परावृत्त नहीं कर सकता। जब तक प्रेमपात्रकी ओरसे तनिक भी स्थूल या मानसिक अथवा बौद्धिक सुख किंवा

लाभ-प्राप्तिकी आशा मनमें है, तब तक समझना चाहिये कि शुद्ध प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ है। शुद्ध प्रेम देनेवाला होता है, लेनेवाला नहीं।

लोक-लाज और शास्त्रोक्त विधि-निषेधोंका उल्लंघन करनेवाले लोग दो प्रकारके होते हैं: निरंकुश और विशुद्ध प्रेमवाले। जब तक प्रेम विशुद्ध न हो, तब तक लोक-लाज और शास्त्र-मर्यादाके पालनमें श्रेय है। विशुद्ध प्रेमवाला मनुष्य लोक या शास्त्रकी नीति-मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता, बल्कि जनसाधारणकी निर्बलताको ध्यानमें रखकर व्यवहार-पटुताकी दृष्टिसे लोक अथवा शास्त्रने सत्य, न्याय इत्यादि वृत्तियोंकी जो मर्यादा बाँध दी होती है, वह उस मर्यादामें बँधकर नहीं रहता; और जब उस मर्यादाको लाँघनेके लिए व्यवहार-बद्ध लोग उसकी बदनामी करते, खिल्ली उड़ाते या निन्दा करते हैं, तो वह उनकी परवाह नहीं करता, और उस हद तक शास्त्रोंके प्रति उदासीन भी रहता है। स्वच्छन्द या निरंकुश व्यक्ति तो नीति-अनीतिमें विश्वास ही नहीं रखता; सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, इन्द्रियजय आदि वृत्तिके लिए उसके मनमें न आदर होता है, न प्रेम; वह नास्तिक है। अगर वह लोक-लाज या शास्त्रोक्त मर्यादाका त्याग करता है — किसी विशुद्ध प्रेमीका अनुकरण करके या उसके वचनोंका हवाला देकर करता है — तो उसमें समाजका कोई कल्याण नहीं। वह तो दंभ और पाखण्डको बढ़ानेवाला है। अतएव उन्नति चाहनेवालोंको अतिशय सावधान रहना चाहिये; ऐसोंका संग कदापि न करना चाहिये। इससे तो मर्यादामें रहनेवाले हज़ार दर्जे अच्छे हैं। विशुद्ध मनुष्यकी सत्यादिक सम्पत्ति और उसका इन्द्रियजय सामान्य लोगों द्वारा स्वीकृत भूमिकासे उन्नत ही होता है, अवनत कदापि नहीं। ध्यान रखनेकी बात है कि ऐसा पुरुष विधि-निषेधोंका त्याग बाह्य क्रियाओं और रूढ़ियोंके सम्बन्धमें ही करता है। दम्भको पहचाननेकी यही कसौटी है।

६

गुरुद्रोह

पुनः पेसाह पर्वका समय आ पहुँचा और ईशु अन्तिम बार यरुशालेमके लिए रवाना हुआ। संभवतः उसके उपदेशारम्भका यह तीसरा वर्ष था। इस समय उसकी उम्र अधिक-से-अधिक ३३ वर्षकी रही होगी। इतने थोड़े समयमें उसने प्रचुर आन्दोलन किया था। फैरिसी और पुजारी उसके दुश्मन बन बैठे थे, और किसी भी उपायसे उसको मरवा डालनेके लिए तैयार थे। दूसरा कोई अभियोग सिद्ध न हो, तो अन्तमें उसे राज्यद्रोही सिद्ध करके वे उसे सरकार द्वारा मृत्युदण्ड दिलानेको उत्सुक थे। फलतः वे हेरोदके अपने आदमियोंमें शरीक हो गये थे। सैडयूसी उसका मज़ाक उड़ानेमें आनंदका अनुभव करते थे। उसके प्रति सद्भाव रखनेवालोंमें उसके शिष्योंके उपरान्त असहाय वर्गके कुछ लोग थे; लेकिन उनमें भी निर्भयता नहीं थी, और ऐहिक अभिलाषायें स्पष्ट रूपसे मौजूद थीं।

पुनः पेसाह पर्व

पेसाह पर्वके आरम्भसे कोई छः दिन पहले ईशु और उसके बारह शिष्य यरुशालेमके समीप बेथॅनी नामक गाँवमें आ पहुँचे, और वे एक ऐसे आदमीके घर ठहरे, जो पहले ईशुके हाथों चंगा हो चुका था।

सत्यकी निर्भीक उपासना

जोभी सिर पर शत्रुओंके बादल उमड़ रहे थे, तोभी ईशुने यरुशालेमके मंदिरमें जाकर अपने माने हुए सत्यका उपदेश करना अन्तिम दिन तक नहीं छोड़ा। पेसाह पर्व शुक्रवारकी साँझको शुरू होता है। ईशुने गुरुवारके दिन भी यरुशालेमके मंदिरमें जाकर उपदेश किया। मंदिरके अन्दर लगनेवाले बाज़ारको फिर खाली करानेका हुक्म वह देता था। ऐसा प्रतीत होता है कि सद्‌बुद्धि और सद्‌उद्देश्यके रहते हुए भी ईशुकी वाणीमें कटुता बढ़ती जाती थी। पाप उससे सहा नहीं जाता था। पाखण्डको देख-देखकर उसका दिल खौला करता था; संभव है कि उसकी कटुताका यह भी कारण हो। लेकिन मालूम होता है कि इस कटुताके कारण वह कुछ हद तक अपना समभाव भी खो चुका था।

पुजारियोंने उसके इस व्यवहारके लिए शास्त्रका आधार चाहा। ईशुने जो जवाब दिया, वह उसकी आध्यात्मिक स्थितिके अनुरूप था। वह शास्त्रका आधार क्या देता? उसे अपने शुद्ध चित्तमें जो सत्य प्रतीत होता था, उसीको वह वाणी द्वारा व्यक्त किया करता था। लेकिन पुजारियोंमें उसकी इस स्थितिको समझने जितनी शक्ति ही न थी। वे तो द्वेषसे परिपूर्ण थे। उनका सारा प्रयत्न इसी ओर था कि ईशुको उसीके शब्दों द्वारा किस प्रकार फँसाया जाय। उनके सामने ईशुकी ज्ञान-चर्चा निरर्थक ही होती थी। फिर भी लोग उसकी लोकप्रियतासे डरते थे। वे उसे पकड़नेके उपायोंकी तलाशमें थे। इस बीच ईशुका एक शिष्य ही उनके हाथमें कूसका हत्था बनने पहुँच गया।

ईशुकी पूजा

एक रात ईशु बेथॅनीमें अपने मेज़बानके घर बैठा था, इतनेमें एक स्त्रीने आकर उसके मस्तक पर सुगंधित और बहुमूल्य इत्र चढ़ाया और बड़ी भक्तिके साथ उसकी पूजा की। येहूदासे यह देखा न गया। वह कहने लगा:- "यह कैसी बरबादी है? इसके अच्छे दाम मिलते और वे ग़रीबोंको दिये जा सकते!" ईशुने कहा: "भाई, इसकी इच्छा पूरी होने दे। इस शरीरकी पूजा फिर दफ़नाते समय ही होगी।"

मालूम होता है कि यह पूजा गुपचुप नहीं हुई होगी। पूजाके साथ लोगोंने ईशुका जय-जयकार किया होगा, और संभवतः उस घोषणामें उसके नामके साथ यहूदियोंके राजाका विशेषण भी जोड़ा गया होगा। क्योंकि दूसरे ही दिन जब पता चला कि ईशु आ रहा है, तो बहुतेरे लोग बाजे-गाजेके साथ उसकी अगवानीके लिए गये और मंगल-सूचक ध्वनि करने और ताड़के पत्तोंकी ध्वजायें फहराने लगे। साथ ही, वे 'यहूदियोके राजा ईशुकी जय'के नारे भी लगाने लगे।

येहूदाका मत्सर

ईशुका यह मान-सम्मान येहूदासे देखा न गया। उसके मनमें कुछ समयसे ईशुका विरोध उठ रहा था। उसने इस अभिषेकको राज्याभिषेकके सदृश ही समझा। ईर्ष्याकी आगसे जलता-भुनता वह फैरिसियों और पुजारियोसे जा मिला, और अच्छा-सा इनाम पानेकी शर्त पर ईशुको उनके हाथमें फँसा

देनेको तैयार हो गया। फैरिसियोंने तुरन्त इस अवसरका स्वागत किया और उसे मुँह माँगे दाम चुका दिये। येहूदाने वचन दिया कि वह ईशुको दिखाकर उसे पकड़वा देगा, और अपनी गवाहीमें उसे राज्यद्रोही साबित कर देगा।

ईशुके शत्रुओंने सोचा कि यहूदी धर्मकी आज्ञाके अनुसार पेसाहपर्वके आरम्भ हो जानेके बाद फिर उसकी समाप्ति तक मनुष्य-हिंसा नहीं हो सकती। इसलिए पर्वारम्भसे पहले ईशुको ताबड़तोड़ मरवा डालना चाहिये। ईशु रात बेथनीमें या आसपासके पहाड़ोंमें बिताता था। उसके शिष्य उसके साथ ही रहते थे। वह भलीभाँति जानता था कि मौत उसके सिर पर मँडरा रही है। वह दिन-रात ईश्वर-चिन्तनमें ही बिताने लगा। कभी-कभी वह सोचता था कि इस संकटसे बचा जा सके तो अच्छा। लेकिन 'ईश्वरेच्छा'के अधीन होनेकी तैयारी वह कर रहा था।

मौतकी तैयारी

गुरुवारकी शामको ईशु अपने शिष्यों सहित यरुशालेममें ही एक भक्तके यहाँ गया। मालूम होता है कि अगले दिन शामको व्रत शुरू करनेसे पहले पिछले दिनकी रातमें खास दावत देने या उत्सव मनानेका रिवाज होगा। भक्तके घर सब खाने बैठे। ईशु ताड़ गया था कि येहूदाके मनमें कपट है, इसलिए खाते-खाते उसने अपने मनका संशय प्रकट भी कर दिया। उसने सब शिष्योंको होशियार और वफ़ादार रहनेको कहा। शिष्योंकी अटलताके संबंधमें उसने थोड़ा अविश्वास भी प्रकट किया। इसपर उसका पट्ट शिष्य पिटर बोल उठा: "सब चाहे दग़ा दे जायँ, लेकिन मैं तो कभी दग़ा न दूँगा।" किन्तु ईशुने भविष्यवाणी करते हुए कहा: "मुर्गेके बाँग देनेसे पहले तू तीन बार मेरा साथी होनेसे इनकार करेगा।"

अन्तिम भोजन

उस रातको ईशु नगरके बाहर ऑलिवकी टेकरी पर प्रार्थना करने गया। साथमें पिटर और दूसरे शिष्य भी थे। उसने शिष्योंसे कहा: "मुझे अब कुछ भी अच्छा नहीं लगता। जीवन इतना नीरस प्रतीत होता है कि शायद प्राण निकल जायँ; इसलिए जब मैं प्रार्थना करूँ, मुझे सँभालना।"

टेकरी पर

उसने प्रार्थना की कि यदि प्रभुकी इच्छा प्रतिकूल न हो, तो वह उसे सिर पर मँडराते हुए इस संकटसे बचा ले। कुछ देर प्रार्थना करनेके बाद वह शिष्योंके पास आया, तो देखा कि वे सो रहे थे। ईशुने उन्हें जगाया और रात प्रार्थनामें बितानेको कहा। वह फिर प्रार्थनामें लीन हुआ, और इधर शिष्य फिर सो गये। तीन बार ऐसा ही हुआ; तीसरी बार शिष्योंको सोते देखकर वह बोला: "तुम्हारी नींद शान्तिमय हो। तुम्हारा साथी अब विरोधियोंके हाथमें पड़ता है।"

गिरफ़्तारी

इतनेमें येहूदा हथियारोंसे लैस एक टोलीके साथ वहाँ आ पहुँचा। टोलीके सरदारसे उसने कहा: "मैं जिसका हाथ चूमूँ, उसे तुम पकड़ लेना।" इतना कहकर वह ईशुके पास पहुँचा और उसको चूमा। ईशुने कहा: "भाई, तुम अपना काम कर लो।" आई हुई टोलीने ईशुको बाँध लिया। इतनेमें पिटर जाग पड़ा और पहले जोशमें तलवार खींचकर महापुजारीके नौकर पर झपटा। इस झपटमें नौकरका कान कट गया। यह देख ईशुने कहा: 'भाई, अपनी तलवार म्यानमें कर; क्योंकि जो तलवार उठायेगा, वह तलवार ही से मरेगा। मैं अपनी रक्षाके लिए बारह लाख फ़रिश्तोंको बुला सकता हूँ; लेकिन मैं इस तरह बचना नहीं चाहता। मेरी मृत्यु ही मेरी सेवा है।" फिर टोलीके लोगोंकी तरफ़ मुड़कर कहा: "भाई, यह व्यर्थकी धमाचौकड़ी क्यों मचाई? आप लोग मुझे मंदिरमें ही पकड़ सकते थे। इस भीड़की क्या ज़रूरत थी? क्या मैं डाकुओंका सरदार हूँ?" लेकिन इस बीच उसके सभी शिष्य पलायन कर चुके थे।

७

क्रूसारोहण

लोग ईशुको महापुजारीके घर ले गये। वहाँ इकहत्तरी सभाके सामने उस पर मुक़दमा चलानेका एक स्वाँग रचा गया। उसके शिष्योंमें अकेला पिटर ही इस मुक़दमेका परिणाम जानने वहाँ पहुँचा था। लेकिन वह भी अधिकारियोंके बीच पहुँचकर वहाँ अँगीठी तापने बैठ गया था। बड़ी देरमें दो गवाह ईशुके विरुद्ध गवाही देनेको खड़े हुए। उन्होंने कहा: "ईशु कहता था कि वह प्रभुका मंदिर तोड़कर दूसरा तीन दिनमें बना सकता है।" यह सुनकर महापुजारीने ईशुसे पूछा: "क्यों, यह सच है न?" ईशुने कोई जवाब न दिया।

मुक़दमा

इस पर महापुजारीने कहा: "मैं तुझे ईश्वरकी शपथ देकर मेरे प्रश्नका उत्तर देनेको कहता हूँ। बोल, क्या तू ईश्वरका अभिषिक्त पुत्र है?"

ईशुने कहा: "आपके शब्द सच हैं। अबसे आप मुझे प्रभुकी दाईं ओर बैठा हुआ देखेंगे।"

यह सुनते ही महापुजारी चिल्ला उठा: "झूठा! निन्दक कहींका! बस! अब विशेष साक्षीकी क्या आवश्यकता है! इसने यहीं ईश्वरका द्रोह किया है।"

सारी सभाने ईशु पर फटकारकी झड़ी लगा दी। किसीने उसके मुँह पर थूका, किसीने तमाचे मारे, और कोई-कोई उसका मज़ाक उड़ाते हुए पूछने लगे: "अगर तू ख्रिस्त है, तो बता कि पीछेसे तुझे किसने धप्पा मारा।"

सब एक साथ चिल्ला उठे: "इसे मार डालो, मार डालो!"

इस समय पिटर क्या कर रहा था? महापुजारीकी एक नौकरानीने उसे अँगीठी तापते देखकर कहा: "यह तो ईशुका साथी है।" पिटरने कहा: "क्यों झूठ बोलती हो? मैं तो उसे पहचानता भी नहीं।"

पिटरकी कायरता

जब वह बाहर निकला तो दूसरी दासीने भी उस पर यही आक्षेप किया। वह फिर बोला : "कैसे .जुल्मकी बात है! मैं कुछ जानता ही नहीं।"

फिर तीसरी बार उसने शपथपूर्वक कहा : "मैं उस आदमीको ज़रा भी नहीं पहचानता!"

इसी समय मुर्ग़ा बोला और पिटरके चित्तको जगा गया। ईशुने यह सब देखा था। पिटर पानी-पानी हो गया। वहाँसे वह मुँह छिपाकर भागा और .खूब रोया। उसे अतिशय पश्चात्ताप हुआ।*

इस सभाको मृत्युदण्ड देनेकी सत्ता न थी। लेकिन यह निश्चय करके कि वह मृत्युदण्ड पाने योग्य है, वे ईशुको सूबेके पास भेज सकते थे। दूसरे, यहूदी अपने पेसाह पर्वके आरम्भमें स्वयं नर-हिंसा करनेको तैयार न थे, इसलिए वे चाहते थे कि रोमन सूबेके मारफ़त ईशु सीधा ही मौतके घाट उतर जाय, तो स्मृतिकी आज्ञाका पालन भी हो जाय। इस विचारसे

सूबेके पास

---

* जिस प्रकार ढलती उमरमें एक बार सख़्त बीमारी भोगनेके बाद स्वस्थ होने पर भी बीमारीसे उत्पन्न कमजोरी बहुत-कुछ बनी ही रहती है, उसी प्रकार एक बार सत्त्व-हानि होनेके बाद पश्चात्तापसे चित्तकी शुद्धि तो होती है, लेकिन निर्बलताके कुछ लक्षण फिर भी बने ही रहते हैं। इस निर्बलताके संस्कार मनुष्यको आजीवन त्रस्त करते रहते हैं, फलतः चित्तकी शुद्धि हो जाने पर भी उसका तेज बहुत नहीं पड़ता। इसका यह अर्थ नहीं कि पश्चात्तापका कोई मूल्य नहीं होता, या इस नियमका अपवाद नहीं होता। जिस विषयमें अपने हाथों अपने सत्त्वकी हानि हुई हो, उस विषयके सत्त्वको पुनः प्राप्त करनेके लिए जब प्राणोंकी भी परवाह न करते हुए सब प्रकारके कष्ट सहनेका प्रयत्न किया जाता है, तो शुद्ध सत्त्वके पुनः प्रकाशित हो उठनेकी संभावना रहती है। मलिनताकी जितनी मिलावट हुई होगी, उतने ही प्रबल तापकी उसके लिए आवश्यकता रहेगी। सत्त्वको पुनः प्राप्त करनेकी तीव्र प्रवृत्ति ही मनुष्यका प्रायश्चित्त बन जाती है। वे महापुरुष धन्य हैं, जिन्होंने अपने जीवनमें कभी सत्त्वहानिका अनुभव नहीं किया! जो काम भयवश या कायरतावश किया जाता है, जिसे करते समय उसके खोटेपनका ख़याल बना रहता है, दिलके अन्दरसे जिसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठती रहती है, फिर भी जो मानसिक दुर्बलताके वश किया जाता है, वह सत्त्वको हानि पहुँचानेवाला होता है। पिटरके अन्दर भी उसकी इस सत्त्व-हानिकी दुर्बलता आजीवन बनी रही थी।

इकहत्तरी सभाने ईशुको बाँधकर सूबेके पास भेजवा दिया। सूबेके घर तक पहुँचते-पहुँचतेमें रास्ते भर ईशुके साथ अत्यन्त निर्दयताका व्यवहार किया गया।

येहूदाका प्रायश्चित्त

इस बीच येहूदाको एकाएक पश्चात्ताप हुआ। यह एक ही विचार उसके दिलको रह-रहकर कचोटने और कुरेदने लगा कि उसने अपने कृपालु गुरुको (जो न केवल निर्दोष था, बल्कि जिसने उसके साथ अनेक उपकार किये थे, जिसके साथ वह एक थालीमें बैठकर खाना खाता था, और जिसने उसे अनेक बार छातीसे लगाया था) पशु-तुल्य मनुष्योंके हाथमें सौंप दिया है। वह सभाके सदस्योंके पास गया और इनामकी रक़म उन्हें वापस देने लगा। वह उनके सामने ईशुके लिए गिड़गिड़ाया भी। लेकिन सदस्योंने कहा: "हमें इससे मतलब? तुम्हारा पाप तुम जानो!" येहूदाको इतना शोक हुआ कि गलेमें फन्दा डालकर उसने आत्महत्या कर ली!

पुजारियोंने रिश्वतके पैसे वापस तो लिए, लेकिन इस पापनिधिको पुनः अपने कोषमें शामिल करते हुए वे झिझके। आखिर उन पैसोंसे एक खेत खरीदा गया और वह विदेशियोंके मुर्दोंको दफ़नानेके लिए पंचोंको सौंप दिया गया। पापके पैसोंसे खरीदा गया यह खेत 'पापक्षेत्र'के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

सूबेकी अदालतमें

सूबेकी अदालतमें ईशुका मुक़दमा चला। महापुजारी और पुजारियोंने ईशुके विरुद्ध गवाही दी। लेकिन ईशुने अपनी सफ़ाईमें एक शब्द भी न कहा। सूबेने उससे पूछा: "क्या यह सच है कि तुम अपनेको यहूदियोंका राजा कहलाते हो?"

ईशुने कहा: "यह अभियोग आप अपनी ओरसे लगा रहे हैं, या दूसरोंके कहने से?"

सूबेने जवाब दिया: "मैं इसमें क्या जानूँ? तुम्हारी जातवाले ही यह सब कह रहे हैं, और तुम्हें मेरे पास लाये हैं।"

इस पर ईशुने उसे समझाया: "मैं जिस राज्यकी बात करता हूँ, वह पृथ्वीका भौतिक राज्य नहीं, बल्कि प्रभुका आध्यात्मिक राज्य है। मैं सत्यका साथी हूँ, सत्यके लिए मेरा जन्म हुआ है, और सत्य धर्मका मैं राजा हूँ।"

यह सुनकर सूबा यहूदियोंकी ओर मुड़ा। उसने ईशुमें कोई दोष नहीं पाया, फिर भी अगर उसके हाथों कोई धर्म-भंग हुआ हो, तो पेसाह पर्वके अवसर पर यहूदीका दण्ड माफ़ करनेकी प्रथाके अनुसार वह उसे छोड़ देना चाहता था। लेकिन यहूदी पुकार उठे: "इसे नहीं, इसे नहीं। बाराबासको छोड़ो।" यह बाराबास एक लुटेरा था।

सूबा निरुपाय हो गया। उसने इस झंझटसे बचनेके लिए एक तरक़ीब सोची। उसे पता चला था कि ईशु गैलिलीका निवासी है।

हेरोदके पास

गैलिलीवालों पर हेरोदका अधिकार होनेसे उसने ईशुको उसके पास भेजनेका निश्चय किया। हेरोद इन दिनों यरुशालेममें ही था।

हेरोदने ईशुके बारेमें बहुत-कुछ सुन रक्खा था। उसने ईशुसे कोई चमत्कार दिखानेको कहा, लेकिन ईशुने उसकी इच्छा पूरी न की। उसने अपनी पत्नीके आग्रहसे योहानका शिरच्छेद करवाया था, लेकिन ईशुने उसका कोई अपराध नहीं किया था। इसलिए उसने ईशुका उपहास करनेके विचारसे उसके शरीर पर एक पुरानी शाही पोशाक पहना दी और उसे वापस सूबेके पास भेजवा दिया।

सूबेने यहूदियोंसे फिर बिनती की कि वे अपना हठ छोड़ दें। उन्हें ख़ुश करनेके लिए उसने ईशुको कोड़ोंसे पिटवाया। काँटोंका एक

कोड़ोंकी सज़ा और अपमान

मुकुट बनवाकर उसे ईशुके सिर पर रखवाया। उसे लोगोंके सामने खड़ा करके 'जय, यहूदियोंके राजाकी जय' कहते हुए तमाचे और घूँसे जमाये, और चाहा कि इतना करके उसे छोड़ दिया जाय।

लेकिन लोगोंके सर पर तो ख़ून सवार था। वे लगातार चिल्लाने और कहने लगे: "ईशुको सूली पर चढ़ा दो! सूली पर चढ़ा दो!" यह देख सूबा घबराया। उसे माफ़ करनेका अधिकार तो था ही। लेकिन

यहूदी कहने लगे : "अगर आप बादशाहके वफ़ादार नौकर हैं, तो ईशुको क्रूस पर चढ़ाइये।" ईशु पर अपनेको

रक्त-पिपासु जातिबन्धु

राजा कहलानेका अभियोग था। सूबा स्वयं बादशाहकी थोड़ी नाराज़ीका शिकार हो पड़ा था। उसे डर था कि अगर इकहत्तरी सभाकी इच्छाके विरुद्ध उसने एक राज्यद्रोहीको छोड़ दिया तो महापुजारी आदि वसीलेवाले लोग उस पर बादशाहकी नाराज़ीको और बढ़वा देंगे। फिर भी उसने लोगोंसे कहा : "मैं तुम्हारे राजाको क्यों मारूँ?" लोग उत्तेजित हो उठे। बोले : "सम्राट्को छोड़, हमारा दूसरा कोई राजा नहीं।"

आखिर पुजारियोंके आग्रहको मानकर सूबेने ईशुको जल्लादोंके हाथमें सौंप दिया। सूबेने ग्रीक, लेटिन और हिब्रू भाषाओंमें अपने हाथों एक तख्त पर लिखा : "यहूदियोंका राजा, नेज़रेथका

मृत्युदण्ड

ईशु" और तख्ता क्रूस पर टँगवानेके लिए दिया। पुजारियोंने इन शब्दों पर आपत्ति की। उन्होंने कहा : "राजाके आगे 'कहलवानेवाला' लिखिये।" लेकिन सूबेने जवाब दिया : "अब जो लिखा, सो लिखा।"*

ईशु लकड़ीका एक बड़ा क्रूस उठाकर जल्लादोंके साथ वध-भूमिकी ओर चला। उसका मज़ाक करती हुई, उसे मारती, अपमानित करती, और उस पर थूकती हुई लोगोंकी भीड़ उसके पीछे-

क्रूसारोहण

पीछे चली। उसके दोनों हाथों और दोनों पैरोंमें बड़े-बड़े कीले ठोंककर क्रूस खड़ा किया गया। उसके कपड़े जल्लादोंको इनाममें मिले। उसी दिन दो चोरोंको भी यही दण्ड मिला था। उन दोनोंके क्रूस ईशुके दोनों ओर खड़े किये गये।

---

* मालूम होता है कि इस प्रकारकी तख्ती लिखनेमें सूबेका हेतु अपना राज्यमद प्रकट करने और यहूदियोंको अपमानित करनेका रहा होगा। उसने 'कहलवानेवाला' शब्द बढ़ाया होता; तो यहूदियोंको बुरा न लगता। लेकिन सूबा तो उन्हें यह जताना चाहता था : "मैं तुम्हारे सच्चे राजाकी भी ऐसी दुर्दशा कर सकता हूँ; मुझे तुम्हारी तनिक भी परवाह नहीं।"

और क्रूसके पास कौन खड़ा था? उसकी माँ, मौसी और दूसरी दो स्त्रियाँ। उसके बारह शिष्योंमेंसे एक ही शिष्य: नन्हा योहाना। बस, वध-भूमिमें ये ही उसके अपने आत्मीयके रूपमें उपस्थित थे। प्राणत्यागसे पहले ईशुने योहानसे अपनी माताकी सार-सँभाल रखनेकी सिफ़ारिश की।

कई घण्टों तक तीव्र वेदना सहकर वह एक बार ज़ोरसे पुकार उठा: "मेरे प्रभु, मेरे प्रभु, तूने मुझे क्यों छोड़ दिया?" उसका गला सूखा जाता था। स्त्रियोंने ऊपर चढ़कर उसके कण्ठमें द्राक्षारस छोड़ा। इसके बाद पुनः एक बार प्रभुको पुकारते हुए उसने कहा: "अपनी आत्मा मैं तुझे सौंपता हूँ," और फिर उसने अपने प्राण छोड़ दिये।

उपसंहार

ईशुके इस बलिदानका ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा। यद्यपि मृत्युके समय उसके पास रहनेकी हिम्मत दो-चार स्त्रियों और नन्हे योहानको छोड़कर दूसरा कोई दिखा न सका, तथापि मृत्युके बाद उसके शौर्यका अंश उसके अनुयायियोंमें उतरे बिना न रहा। नवयुगका जो बीज वह बो गया था, सो फूल-फलकर बहुत बड़ा वृक्ष बन गया। उसकी मृत्युके पश्चात् कई यहूदी भी ख्रिस्ती बने और बहुतोंने सत्यके लिए प्राणार्पण किये। जिस साम्राज्य सत्ताने उसे मृत्युदण्ड दिया था, वह स्वयं भी इस नये धर्ममें लीन हो गई। लेकिन ख्रिस्तियों और यहूदियोंमें तीव्र शत्रुता क़ायम हो गई। और जब सत्ता ख्रिस्तियोंके हाथमें आई तो यहूदियोंकी बहुत दुर्दशा हुई। उन्हें देश छोड़कर जहाँ-तहाँ भटकना पड़ा, और आज भी उनकी स्थिति बहुत दयनीय ही है। लेकिन दूसरे रूपोंमें उनकी विरासत भी नष्ट न हुई। धन, तीर्थ, विधि-विधान और द्वेषको जो जड़ उपासना वे करते थे, सो ख्रिस्तियोंमें भी घुस गई। दैवासुर-सम्पत्तिका संघर्ष न मिटा, सो न ही मिटा। यरुशालेमका तीर्थस्थान, जिस क्रूस पर ईशुने प्राण छोड़े थे उस क्रूसकी लकड़ी, क्रूसका वह आकार, सभी पूज्य बन गये। बादके समयमें उस जड़ पृथ्वीके टुकड़ों पर सत्ता प्राप्त करनेके लिए अनेक बार रक्तकी नदियाँ बहीं और आज भी उस जगहके झगड़े मिटे नहीं हैं। लेकिन उसका उपदेश? उसकी सत्योपासना? उसका धर्मराज्य? . . . सबको प्रभुके धाममें पहुँचना

है। लेकिन किस तरह ? अपने विकारोंका नाश किये बिना, इन्द्रियों और मनको जीते बिना, चित्त शुद्ध किये बिना, भोगोंको त्यागे बिना, स्वार्थवृत्ति और विलासकी तृष्णाको छोड़े बिना, ज्ञान बिना, पुरुषार्थ बिना, निरभिमान बने बिना, आप चाहते हैं कि दूसरा कोई आपको स्वर्गमें ले जाय, और आप झटसे कूदकर वहाँ चले जायँ ! सन्त बने बिना, सन्तोंकी पंक्तिमें बैठना चाहते हैं ? यह कैसे हो सकेगा ? जिस प्रकार बिना उष्णताके अग्नित्वकी सम्भावना नहीं, उसी प्रकार बिना साधुताके शान्ति भी नहीं। अपनी भूखको बुझानेके लिए जिस तरह अपने ही जबड़े हिलाने पड़ते हैं, उसी तरह अपना उद्धार भी अपने हाथों ही होता है। जब तक मनुष्य इस सत्यको हृदयंगम नहीं करता कि स्वयं साधुता प्राप्त किये बिना प्रभुके धाममें प्रवेश नहीं मिल पाता, तब तक अपने इष्टदेवकी तारक शक्ति पर रहनेवाली अटल श्रद्धा भी मूढ़तापूर्ण ही रहेगी। सन्तोंके चरित्र साधुता प्राप्त करनेके लिए मार्गदर्शक-भर होते हैं। उद्धार स्वयं सन्त बननेमें है; सन्तोंकी मूर्त्तियों अथवा उनकी प्रसादीके स्थानों या वस्तुओंकी मात्र पूजा करनेमें नहीं। सन्तको पूजा ही पर्याप्त नहीं होती। जब सन्त प्रिय बन जाता है, प्रियतम बन जाता है, अपने गुणोंके साथ हमारे हृदयमें निवास करने लगता है, और उसके और हमारे बीच कोई अन्तर नहीं रह जाता, तभी उसका जीवन सार्थक होता है, हमें मोक्ष मिलता है और जगत्का कल्याण होता है। अस्तु !

टिप्पणी

ईशुका पुनरुत्थान : ईशुके चमत्कारोंमें एक चमत्कार यह भी है कि वह मृत्युके तीसरे दिन फिर जी उठा था; और ख्रिस्ती धर्मकी सचाईका यह एक बड़ा प्रमाण माना जाता है। जो इसमें विश्वास नहीं रखता, वह श्रद्धालु ख्रिस्त नहीं माना जाता। कथा इस प्रकार है :

परमेश्वरके युवराजके अवतारके सम्बन्धमें यहूदी धर्मग्रंथोंमें जो भविष्यवाणियाँ हैं, और उनमें युवराजकी पहचानके जो लक्षण दिये गये हैं, उनमें एक यह माना जाता है कि दुष्ट लोग उसे मार डालेंगे, लेकिन तीसरे दिन वह फिर अपनी क़ब्रमेंसे उठेगा और अपने भक्तोंको दर्शन देगा। यदि ईशु सचमुच ही ईश्वरका युवराज है, तो उसके जीवनमें इस

भविष्यवाणीके सत्य सिद्ध होनेका प्रमाण मिलना चाहिये। ईशुके चरित्र-लेखक कहते हैं कि यह बात जैसी पुराणोंमें लिखी है, वैसी ही हुई थी।

क्रूस पर चढ़ानेके बाद लगभग दिन ढलते-ढलते ईशुका प्राणान्त हुआ था। शामको पेसाह पर्व शुरू होनेवाला था, अतएव उससे पहले दफ़नानेका काम हो जाना ज़रूरी था। विधिपूर्वक दफ़नानेका समय न था। फिर भी ईशुके एक गुप्त किन्तु प्रभावशाली भक्तने सूबेसे मिलकर उसके शवको अपने क़ब्ज़ेमें लिया, और एक तैयार क़ब्रमें उसे सुलाकर क़ब्रके मुँह पर शिला ढँक दी।

जब पुजारियोंको इसका पता चला, तो उन्हें पुराणगत भविष्यवाणीका खयाल होनेसे उन्होंने क़ब्र पर पहरा बैठा दिया, ताकि ईशुके शिष्योंकी ओरसे कोई कपट न हो।

शुक्र, शनि, और रविकी तीन रातें बीत गईं और सोमवार (ईस्टर त्यौहारका अन्तिम दिन) आया। चूँकि पेसाह समाप्त हो चुका था, इसलिए उस दिन ईशुका अन्त्येष्टि संस्कार करना था। उस दिन सुबह-सुबह जब ईशुकी माँ और उसकी एक शिष्या क़ब्रके पास पहुँचीं, तो देखा कि शिला हटी हुई थी और शवका पता न था! उन्हें आश्चर्य हुआ। फिर जब उन्होंने मुड़कर देखा तो उन्हें वहाँ प्रकाशमें दो देवदूत (फ़रिश्ते) दिखाई पड़े। उन्होंने कहा कि भविष्यवाणीके अनुसार ईशु क़ब्रमेंसे उठा है, अतएव यह शुभ समाचार शिष्योंको पहुँचा दो।

उन्होंने तुरन्त पिटर आदिके पास खबर भेजी। उन्हें इस पर विश्वास न हुआ। लेकिन इतनेमें तो ईशु स्वयं उनके बीच जा पहुँचा और उनको विश्वास करा दिया। फिर कुछ समय तक उनके साथ ही रहकर वह अन्तर्द्धान हो गया। ऐसा कई बार और कई जगह हुआ।

यहूदी तो अलबत्ता यही मानते हैं कि पहरेदारोंको रिश्वत देकर रचा गया यह एक षड्यंत्र ही था। शिष्योंने पहले वहाँसे उसका शव चुरा कर दूसरी जगह गाड़ दिया और बादमें यह कथा गढ़ डाली।

इस क़िस्सेमें आधी सचाई होनेकी सम्भावना है। ईशुके क़ब्रमेंसे ग़ायब हो जानेकी बात सच न भी हो, मगर शिष्योंको उसके दर्शन होनेकी बात सच हो सकती है। मृत्युके बाद अपने शिष्योंको और दूसरोंको भी

मृत गुरुका प्रत्यक्षवत् दर्शन होनेकी बात बहुतेरे सन्तोंके चरित्रोंमें पाई जाती है । इस दर्शनमें बातचीत होने, स्पर्शानुभव करने, प्रसादीमें कुछ वस्तुयें मिलने आदिकी बातें मुख्य होती हैं । इसके सम्बन्धमें यही कहा जा सकता है कि चित्तशक्तिका यह एक रहस्य है । यदि मृत व्यक्तिने अपने जीवनमें इस प्रकारकी वासना रक्खी हो, तो उसका यह परिणाम हो सकता है । ऐसे चमत्कार शुरूमें जगह-जगह दिखाई पड़ते हैं, लेकिन धीमे-धीमे वे कम होते जाते हैं । कभी-कभी शिष्योंकी तीव्र कल्पना शक्ति भी ऐसे दर्शनोंका निर्माण कर लेती है ।

ये दर्शन सच्चे हों, कल्पना-प्रसूत हों, या निरी गप हो, तो भी इन पर उस गुरुकी या उसके द्वारा उपदिष्ट धर्मकी सत्यताको परखना उचित न होगा । क्योंकि चमत्कार सत्यका या साधुताका आवश्यक चिह्न नहीं है । ख्रिस्ती धर्ममें जो भी शाश्वत सचाई या सदंश है, वह ईशुके चारित्र्य और उसकी वाणीके तेजका परिणाम है; उसके बारेमें वर्णित चमत्कारोंका नहीं ।

ईशु ख्रिस्त

खंड दूसरा

ईशुकी वाणी

१

गिरि-शिखरका प्रवचन

अपने प्रथम बारह शिष्योंको दीक्षा देनेके बाद ईशु उन्हें एक दिन पर्वत पर ले गया। वहाँ उसने उन्हें जो उपदेश दिया, वह उसका सबसे महत्त्वपूर्ण उपदेश है। अपने जीवनका सारा रहस्य उसने इस उपदेशमें भर दिया है। नीचे उसका सार दिया जाता है:

धर्मराज्यके अधिकारी

इस संसारमें जो दीन, दुखी, नम्र, सद्धर्मके भूखे, दयालु, पवित्र मनवाले, शान्ति तथा ऐक्य बढ़ानेवाले हैं, वे ही सचमुच धन्य हैं; वे ही मोक्षके अधिकारी हैं; वे ही शान्ति प्राप्त कर सकते हैं; वे ही प्रभुके पुत्र बनने लायक़ हैं; वे ही धर्मराज्यमें रहने योग्य हैं। जिसे स्वधर्म-पालनके लिए अत्याचार सहने पड़े हैं, उसका जीवन धन्य है, क्योंकि वही धर्मराज्यका अधिकारी है।

सुदैव क्या ?

सन्तो, जब लोग तुम्हारी निन्दा करें, तुम पर अत्याचार करें, मेरे कारण तुम्हारे ऊपर झूठे अभियोग लगायें, तो तुम अपनेको सौभाग्यशाली समझना; क्योंकि उससे तुम्हारा कल्याण ही होगा। जो-जो भी सन्त हो गये हैं, उन्होंने तिरस्कार और त्रास सहकर ही साधुता प्राप्त की है।

झूठे सुख

सन्तो, धन तुम्हें शान्ति नहीं दे सकेगा; उसे तुम अपना बल न समझना; क्योंकि जब वह चला जायगा, तो तुम्हारा मन शान्त — सन्तुष्ट — न रह सकेगा।

अपने वर्त्तमान सुखसे तुम अपनेको सौभाग्यशाली न समझना; क्योंकि उसके कारण एक दिन रोना भी पड़ेगा, और तब तुम्हारा आजका सुखानुभव तुम्हारे दुःखको कम न कर सकेगा।

और तुम अपनी प्रशंसासे फूल न जाना; क्योंकि उससे तुम्हें साधुता प्राप्त न होगी।

सन्तो, तुम अपनेको दीन और दयनीय न समझना। तुम इस संसारके नमक हो — प्राण हो! नमक स्वादका सार है, लेकिन यदि वह स्वादरहित बन जाय तो मिट्टीमें फेंक देने और पैरसे कुचलने लायक़ माना जाय; इसी तरह तुम भी अपना सत्त्व — नमक — खोकर पैरों तले कुचल डालने योग्य न बनना। तुम इस दुनियाके नूर हो। जिस प्रकार पहाड़ी पर बसे हुए शहरको छिपाया नहीं जा सकता, जलती हुई मोमबत्तीको ढँककर रक्खा नहीं जा सकता, — उसे तो ताक या आलेमें ही रखना उचित है — उसी प्रकार तुम अपने नूरको दुनियामें फैलाकर उसे प्रकाशित करो, ताकि लोग तुम्हारे सत्कर्मोंको देख सकें और तुम्हारे प्रिय प्रभुका यशोगान कर सकें।

जगत्के प्राण कौन ?

सन्तो, यह न समझना कि मैं पुराने शास्त्रोंका उच्छेद करने आया हूँ। मैं तो उनके रहस्योंको समझाना और उनके तत्त्वोंका विशेष पूर्णताके साथ पालन करवाना चाहता हूँ। निश्चय मानो कि जब तक स्वर्ग और पृथ्वीका अस्तित्व है, तब तक घासके एक तिनकेके लिए भी यह संभव नहीं कि वह प्रभुके नियमोंका पालन न करे। जो उन्हें अणुमात्र भी तोड़ेगा, वह प्रभुके यहाँ अणुवत् ही रहेगा। जो उनका पालन करेगा और उन्हींका प्रचार करेगा, वह प्रभुके यहाँ भी महान् माना जायगा। शिष्यो, यह निश्चय समझो कि जब तक तुम अपने शीलमें फैरिसियों और शास्त्रियोंके शीलसे उन्नत न बनोगे, तब तक प्रभुके द्वार तुम्हारे लिए खुलेंगे नहीं।

ईश्वरके अविचल नियम

कभी किसीकी हत्या न करनेके आदेशको तो तुम जानते ही हो। और तुम मानते हो कि जो हत्या करता है, उसे अधोगति मिलती है। लेकिन मैं कहता हूँ, मात्र हत्या ही हिंसा नहीं है। यदि तुम अपने भाई पर भी क्रोध करोगे, तो मैं कहता हूँ कि तुम नरकके अधिकारी बनोगे; यदि तुम अपने भाईको गाली दोगे, तो भी तुम अधोगति ही पाओगे; और यदि तुम उसे मूर्ख कहोगे, तो भी उसका दण्ड तुम्हें भोगना ही होगा। यज्ञकी

अहिंसा

वेदी पर खड़े होकर अपनी बलि चढ़ाते समय यदि तुम्हें याद आये कि तुम्हें अपने भाई पर तनिक भी क्रोध है, तो मैं कहता हूँ कि तुम बलि चढ़ाना छोड़कर पहले अपने भाईके पास जाना और उसे संतुष्ट करके फिर अपनी बलि चढ़ाना। अपने विरोधीके साथ समझौता करनेमें तुम कभी देर न लगाना।

सन्तो, शास्त्रोंका आदेश है कि आँखके बदले आँख और दाँतके बदले दाँत लेना चाहिये।* लेकिन मैं तो कहता हूँ कि तुम दुष्टके साथ दुष्टता न करना। बल्कि जो तुम्हारे दायें गाल पर चपत जमाये, उसके सामने तुम अपना बायाँ गाल भी कर देना। और अगर कोई तुमसे लड़ने आवे, और तुम्हारा कुरता लेना चाहे, तो तुम उसे अपना अँगरखा भी दे देना।†

सांसारिक नीति यह है कि मित्रसे प्रेम किया जाय और शत्रुसे द्वेष; लेकिन मेरी सलाह है कि तुम अपने शत्रुसे भी प्रेम करना और कभी किसीका द्वेष न करना। जो तुम्हें शाप दे, तुम उसका हित चाहना; जो तुम्हें सताये, उस पर तुम उपकार करना। प्रभुको पानेका यही मार्ग है। जिस प्रकार परमात्मा सज्जन और दुर्जन दोनोंको समान रूपसे सूर्यका प्रकाश पहुँचाता है, और न्यायी और अन्यायी पर समान रूपसे पानी बरसाता है, उसी तरह, सन्तो, तुम अपनी सद्वृत्ति सबके लिए समान रखना। जो तुम्हें चाहते हैं, उनको चाहनेमें विशेषता क्या?

ऐसा तो स्वार्थी मनुष्य भी करते हैं। उपकारके बदले उपकार करनेमें विशेषता क्या? इतना तो जंगली लोग भी कर लेते हैं। शिष्यो, जो वापस दे सकता है, उसको देना दान नहीं कहलाता; यह तो पापी भी कर लेते हैं। किन्तु जिससे कुछ भी पानेकी आशा न हो, उसीको दो। और शिष्यो, तुम अपने अपराधियोंको उदारता पूर्वक क्षमा करो,

---

* इसका यह मतलब नहीं कि आँखके बदले आँख और दाँतके बदले दाँत ही लेने चाहिये, कहनेका तात्पर्य यह है कि इससे अधिक न लिया जाय।

† देखिये: बैरका नाश बैरसे नहीं होता, बल्कि निर्वैरतासे ही बैरका नाश होता है। यही सनातन धर्म है।—बुद्ध

दुष्ट बुद्धिवाले पुरुष तुम्हें गाली दें या मारें तो भी तुम तो उन्हें क्षमा ही करो, और मनसे भी उनका भला ही चाहो—स्वामी सहजानंद

क्योंकि तभी तुम उस प्रभुकी क्षमाके अधिकारी बन सकोगे; तुम कृतघ्नके प्रति भी करुणा धारण करो; क्योंकि प्रभु ऐसा ही करुणामय है। सन्तो, परमात्मा जिस प्रकार पूर्ण और समस्त सद्‌गुणोंका भण्डार है, उसी प्रकार तुम भी पूर्ण बनो, पूर्ण बनो!

और, यह तो तुम जानते हो कि व्यभिचार शास्त्राज्ञाके विरुद्ध है। लेकिन मैं कहता हूँ कि जो कोई कुदृष्टिसे देखता है, उसने भी अपने मन द्वारा व्यभिचार किया ही है। शिष्यो, यदि तुम्हारी दाहिनी आँख कभी पापवश चचल बने, तो तुम उसे फोड़ डालना। अगर तुम्हारा दाहिना हाथ तुमसे अनुचित काम कराना चाहे, तो तुम उसे तुरन्त काट डालना। क्योंकि तुम्हारे सत्त्वकी हानिकी अपेक्षा तुम्हारे शरीरका एकाध अंग कम भी हो जाय, तो उसमें उतनी हानि नहीं।

अव्यभिचार

किसीके आन्तरिक हेतुओं पर तर्क-वितर्क न करो, बल्कि सबके प्रति उदार बुद्धि रक्खो।

निर्मत्सरता

और शिष्यो, क्या कभी अन्धा अन्धेको मार्ग दिखा सकता है? इसी तरह जब तक शिष्यका शिष्यत्व क़ायम है, वह गुरुसे आगे नहीं बढ़ सकता; लेकिन पूर्ण होने पर मात्र गुरु-सदृश बन सकता है।

जब तक तुम्हारी आँखमें कंकर पड़ा हो, दूसरेकी आँखमें पड़े हुए रजकणको देखने न बैठो; उसे निकालनेका प्रयत्न करो; पहले अपने ही दोषोंको दूर करो।

अच्छे वृक्षका फल खराब नहीं होता; और न खराब वृक्ष पर अच्छा फल बैठ सकता है। क्योंकि वृक्षकी जात उसके फल परसे ही जानी जाती है। इसी प्रकार तुम्हारे कर्म और तुम्हारी वाणीसे तुम्हारे हृदयका पता चलता है।

मन-कर्मका संबंध

और शास्त्रोंमें कहा गया है कि झूठी शपथ न लेनी चाहिये, और ली हुई शपथका सम्पूर्ण पालन करना चाहिये। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम्हें किसी भी दशामें कोई शपथ न लेनी चाहिये। न भगवान्‌की, न भगवान्‌के धामकी, न पृथ्वीकी, न मंदिरकी, न तीर्थकी, न तुम्हारी अपनी,

शपथ

न दूसरे किसीकी। क्योंकि तुम न तो एक सफ़ेद बालको काला बना सकते हो, न कालेको सफ़ेद कर सकते हो। इसलिए तुम्हें तो सोच-विचारकर सिर्फ़ 'हाँ' या 'ना' ही कहना चाहिये; इससे अधिक कोई प्रतिज्ञा न करनी चाहिये।

सच्चा शिष्यत्व

मुँहसे गुरु, गुरु, कहते रहने पर भी अगर तुम मेरे प्रभुके आदेशोंके अनुसार अपना जीवन न बिताओगे, तो तुम मेरा आश्रय और ईश्वरका नाम व्यर्थ ही लोगे। ऐसोंको मैं कभी अपना कहकर अपनाऊँगा नहीं। यदि तुम क़यामतके दिन मुझसे कहोगे कि हम तो तुम्हारा ही नाम लेते थे, और तुम्हारे नामका ही प्रचार करते थे, तो भी मैं कहूँगा कि, 'जाओ, मैं तुम्हें नहीं पहचानता।' इसलिए होशियार रहना। अपना मकान पक्की नींव पर मज़बूतीके साथ बनाना। तभी वह बड़े-से-बड़े तूफ़ानके सामने टिक सकेगा। अगर तुम बिना नींवका कच्चा मकान बनाओगे, तो वह बारिश और तूफ़ानको बरदाश्त न कर सकेगा, वह गिर पड़ेगा और सब प्रकारसे तुम्हें नष्ट कर डालेगा।

अनाडम्बर

सन्तो, तुम अपने सत्कार्योंको छिपाये रहना। अपने दाहिने हाथ द्वारा दिये गये दानकी ख़बर बायें हाथको भी न होने देना। और जब तुम उपवास करो, मुँह पर प्रसन्नता धारण किये रहना, ताकि किसीको पता न चले कि तुमने उपवास किया है। अपनी पूजा और प्रार्थनाका आडम्बर या प्रदर्शन न करना। रास्ते पर या मन्दिरमें जाकर उसका रूप सबके सामने प्रकट न करना; बल्कि अपने हृदयके एकान्त कोनेमें, कपाट बन्द करके, अपने प्रभुको याद करना।

प्रार्थनाका अर्थ व्यर्थकी बकवास नहीं। बहुतसे शब्दोंका उपयोग करनेसे ही प्रभुको प्रसन्न नहीं किया जा सकता। बल्कि तुम इस प्रकार प्रार्थना करना :

हे दिव्यधामवासी पिता! तेरा जय जयकार हो। तेरा धर्मराज्य सर्वत्र फैले। तेरी आज्ञाओंका स्वर्ग और पृथ्वीमें भलीभाँति पालन हो। तू

हमें अपनी रोज़की रोटी ही देना।* हमें अपने विकारोंके लालचमें न फँसने देना, और जिस तरह हम भी अपने अपराधियोंको माफ़ करते हैं, उसी तरह तू भी हमारे अपराधोंको माफ़ करना; क्योंकि सर्वत्र तेरा ही धर्मराज्य, तेरी ही प्रभुता और तेरा ही यश व्याप्त है। आमीन!

खिस्ती प्रार्थना

शिष्यो, तुम प्रभु और शैतानकी सेवा एक साथ नहीं कर सकते; यानी धन और कीर्तिकी तृष्णा रखकर, अन्न और प्राणकी चिन्ता करके तुम प्रभुके पथ पर नहीं चल सकते। अपनी चिन्तासे तुम अपने शरीरको एक नखके बराबर भी पुष्ट न कर सकोगे; अतएव उसकी चिन्ता तुम छोड़ ही देना। जो सबकी रक्षा करता है, जो पशु, पक्षी और वृक्षका पोषण करता है, दृढ़ श्रद्धा रखना कि वह तुम्हारा भी पोषण करेगा ही।

ईश्वर और शैतान

---

* 'Give us day by day our daily bread,'का यह अनुवाद करना मैंने उचित समझा है। खिस्तियोंकी प्रार्थना पर एक आक्षेप यह किया जाता है कि उसमें रोटीकी अर्थात् ऐहिक सुखकी याचना की जाती है; मेरी रायमें इस वाक्यका अर्थ न समझनेके कारण ही ऐसा आक्षेप किया जाता है। प्रार्थनाका तात्पर्य यह है कि हमें अपनी दैनिक आवश्यकताओंसे तनिक भी अधिक न देना; हमें अपरिग्रही रखना। आगेके उपदेशसे यह स्पष्ट हो जाता है। ईशुने भी हमारे भक्तोंकी तरह ही कहा है :

भोजनाच्छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः।
योऽसौ विश्वम्भरो देवः स भक्तान् किमुपेक्षते ॥

(वैष्णव भोजन और वस्त्रकी चिन्ता व्यर्थ ही करते हैं; जो विश्वका पोषण करनेवाला है, क्या वह भक्तोंकी उपेक्षा करेगा?)

फिर, अपने शिष्योंको प्रचारार्थ गाँवोंमें भेजते समय ईशुने उन्हें उपदेश दिया था कि, 'पैसेका स्पर्श न करना; खाने-पीनेकी चीजें साथमें न लेना, जूते न पहनना, रास्तेमें मिलनेवालोंको सलाम करनेके लिए न रुकना (यानी रुककर सलाम करनेकी वृत्ति न रखना, बल्कि अत्यन्त निरपेक्ष भावसे रहना)' वही ईशु रोटीके लिए प्रार्थना करे, यह कैसे हो सकता है? रोटी तो मिलेगी ही; उसमें कोई संदेह ही नहीं; लेकिन प्रार्थना यही है कि वह आवश्यकतासे अधिक न मिले।

श्रद्धाकी महिमा

अश्रद्धालु लोग श्रद्धाकी महिमा नहीं समझते, इसी कारण वे अन्न, जल और वस्त्रकी चिन्ता करते हैं। यदि तुम शुद्ध बनोगे तो तुम्हें सभी कुछ मिल जायगा।

कलकी चिन्ता आजसे न करो। कल कलकी चिन्ता कर लेगा। तुम्हारे सिर आज ही को ठीक-ठीक सँभाल लेनेका बोझ कुछ कम नहीं है।

बस, श्रद्धापूर्वक माँगनेकी ही देर है; खोजनेकी ही खोट है; अन्दर जानेके लिए प्रभुके द्वारको खटखटानेकी ही देर है। क्या तुममें कोई ऐसा है, जो अपने पुत्रको रोटी माँगने पर पत्थर देगा? तो फिर तुम्हारा प्रभु तुम्हें कल्याणकारी वस्तुएँ माँगने पर अनिष्टकारी वस्तुएँ क्यों देगा?

प्रभुका मार्ग

लेकिन प्रभुके धाममें प्रवेश करनेका मार्ग सँकड़ा—पगडण्डीका—मार्ग है। नरकका मार्ग चौड़ा और सर्वत्र प्रसिद्ध है, किन्तु ईश्वरके घरका मार्ग सँकड़ा और श्रमप्राप्य है।

२

अन्य प्रवचन

१. शिष्योंकी बिदाई

(शिष्योंको उपदेश-यात्रा पर भेजते समय ईशुने उनसे कहा था :)

जाओ, सर्वत्र इस संदेशका प्रचार करो कि प्रभुका राज्य सन्निकट है; साथ ही तुम रोगियोंकी सेवा करो, कोढ़ियोंको शुद्ध करो, मुर्दोंको जगाओ, भूतोंको भगाओ। उदारतापूर्वक तुम्हें मिला है, उदारतापूर्वक तुम उसे दो!

तुम अपने साथ न सोना रखना, न चाँदी; पीतलके सिक्के भी अपनी थैलीमें न रखना। अपनी यात्राके लिए तुम न कलेवा लेना, न वस्त्र, न जूते न लाठी; क्योंकि मज़दूर सब जगह अपने मेहनतानेका अधिकारी होता है।

भेड़ियोंके बीच भेड़ोंकी तरह मैं तुम्हें भेजता हूँ; अतएव साँपकी तरह सावधान और चिड़ियाकी तरह नम्र बनना।

दुष्टोंसे होशियार रहना। वे तुम्हें मारेंगे, पीटेंगे, और राजदरबारमें पेश करेंगे। जब तुम्हें न्यायासनके सामने खड़ा किया जाय, तुम पहलेसे कोई जवाब सोचकर न रखना; ईश्वर स्वयं ही समय पर तुम्हें सुझा देगा कि क्या कहना चाहिये। क्योंकि तुम्हें कुछ कहना नहीं है; ईश्वरको ही कहने देना है।

देखना, ऐसा विरोध खड़ा होगा कि भाई भाईको, बाप बेटेको और बेटा बापको पकड़वायेगा और सूली पर चढ़वायेगा। और, मेरे कारण लोग तुम्हें धिक्कारेंगे। लेकिन जो अन्त तक टिका रहेगा, वह तर जायगा।

एक जगह लोग तुम्हें सतायें, तो तुम दूसरी जगह चले जाना। मैं तुम्हारे साथ ही हूँ।

गुरुसे शिष्य चढ़ नहीं सकता, और सेठसे नौकर बढ़ नहीं सकता। शिष्य गुरुके समान और नौकर सेठके समान बन जाय तो बस है। अतएव वे, जो मुझे शैतान कहते हैं, तुम्हें क्यों छोड़ने लगे?

अतः भयमात्रका त्याग करो। हमारे पास ऐसी कोई गुप्त वस्तु नहीं, जिसे हम प्रकट न कर सकते हों; ऐसा कुछ छिपा हुआ नहीं, जो खोलकर न दिखाया जा सके। मैंने जो बात तुम्हें एकान्तमें कही हो, तुम चौड़ेमें कहना; जो कानमें कही हो, तुम उसे ज़ोरसे कहना।

और, शरीरकी हानिसे कभी न डरना; किन्तु आत्माकी हानिसे डरना। क्योंकि आत्महानि होनेसे शरीरको भी नरक भोगना पड़ेगा।

प्रभुकी आज्ञा बिना एक अण्डा भी नीचे गिर नहीं सकता; तुम्हारे सिरके एक-एक बालका हिसाब प्रभुके यहाँ लिखा हुआ है। इसलिए चिन्ता न करो; ईश्वरके यहाँ तुम्हारी क़ीमत अण्डोंसे ज्यादा है। जो संसारके सामने मुझे स्वीकारेंगे, ईश्वरके सामने मैं उन्हें स्वीकारूँगा। लेकिन जो दुनियासे डरकर यहाँ मेरा त्याग करेंगे, ईश्वरके वहाँ मैं भी उनका त्याग करूँगा।

मैं संसारमें केवल शान्ति स्थापित करने ही नहीं आया। अशान्ति मचाने भी आया हूँ। बाप और बेटेमें, माँ और बेटीमें, सास और बहूमें विरोध मचेगा। बड़े-से-बड़े कलह घरोंमें ही मचेंगे। जो माँको या बापको मुझसे अधिक महत्त्व देंगे, या बेटा-बेटीका अधिक मोह रक्खेंगे,

वे मुझे पा न सकेंगे। जिसे मेरे पीछे आना हो, वह अपना क्रूस अपने ही कन्धे पर उठाकर आये। जो (नाशवान) जीवनको बचाना चाहेगा, वह (अविनाशी) जीवनको खोयेगा! लेकिन जो मेरे लिए (नाशवान) जीवनको खोयेंगे, उन्हें (अविनाशी) जीवन मिलेगा।

जो तुम्हें अपनायेंगे, उन्होंने मुझे अपनाया ही है। और, जिन्होंने मुझको अपनाया है, उन्होंने मुझे यहाँ भेजनेवालेको अपनाया है।

२. प्रभुका धाम

प्रभुका धाम राईके दानेके समान है। दीखनेमें वह अत्यन्त सूक्ष्म है; लेकिन जब उगता है, तो एक विशाल वृक्ष बन जाता है, और कई पक्षियोंका आश्रयस्थान।

और, प्रभुका धाम खमीरके समान है, जिसका थोड़ा ही अंश बहुतसे आटेमें मिलकर उसमें 'आथ' चढ़ाता है।

और, प्रभुका धाम उस खेतकी तरह है, जिसमें अनन्त धन गड़ा हुआ है; आदमीको इसका पता चलते ही वह झटपट अपना सर्वस्व देकर भी उसे खरीद लेनेको तैयार हो जाता है, और जबतक सौदा पट नहीं जाता, खज़ानेकी बात किसी पर प्रकट नहीं होने देता।

और, प्रभुका धाम उत्तम मोतीकी भाँति है। जिस प्रकार जौहरी उसका पता चलते ही अपना सारा धन देकर उसे खरीदना चाहता है, उसी प्रकार मुमुक्षु उसे पानेका प्रयत्न करता है।

३. मुँहके बाहर और अन्दर

(ईशुके कुछ शिष्योंको बिना हाथ धोये खाते देखकर किसीने सवाल किया, उसके जवाबमें उसने कहा:)

तुम जिन पदार्थोंको अपने मुँहके रास्ते पेटमें डालते हो, वे आखिर तो बाहर ही निकल आते हैं। लेकिन जिसे तुम मुँहसे बाहर निकालते हो, वह तो हृदयकी चीज़ है; और उसकी खराबी तुम्हें खराब करती है। क्योंकि कुविचार, ख़ून, व्यभिचार, लंपटता, चोरी, झूठी गवाही और निन्दा, ये सभी हृदयसे निकलते हैं। मनुष्यको अपवित्र बनानेवाली चीज़ तो यह है; बिना हाथ-पैर धोये खानेका दोष तो एक नगण्य-सा दोष है।

४. बालवृत्ति

एक बार एक बालकको अपने शिष्योंके सामने बैठाकर ईशुने कहा :

जब तक तुम इस बालककी तरह नहीं बनते, तब तक ईश्वरका दरवाज़ा तुम्हारे लिए बन्द है। जो इस बालककी तरह नम्र बनता है, वह ईश्वरकी निगाहमें महान्-से-महान् ठहरता है। और, जो ऐसे बालकको मेरे नामसे अपनाता है, वह मुझे अपनाता है। लेकिन जो ऐसे निर्दोष बालकको सताता है, वह तो गलेमें पत्थर बाँधकर डुबो देने लायक़ है।

हाथ, पैर या आँखके पापमें पड़नेसे बेहतर तो यह है कि उन्हें काट डाला जाय। लूले, लँगड़े या काने बनकर जीवन बिताना अच्छा है, लेकिन दो हाथ, दो पैर या दो आँखोंको सलामत रखकर संसारके अन्दर नरककी आगमें जलते रहना बुरा है।

छोटे बच्चोंको कभी सताना मत। प्रभुके फ़रिश्ते उन्हें दिलसे चाहते हैं। उन्हें बचानेके लिए ही तो मेरा यह अवतार है।

५. सच्ची पूजा

जिस प्रकार गडरिया अपनी भेड़ों और बकरियोंको अलग-अलग छाँटकर एक ओर भेड़ोंको और दूसरी ओर बकरियोंको बैठाता और बीचमें ख़ुद खड़ा रहता है, उसी प्रकार मनुष्योंका राजा भक्तोंको अपनी दाहिनी ओर तथा अ-भक्तोंको बायीं ओर बैठायेगा।

फिर वह भक्तोंसे कहेगा: "आओ मेरे प्रभुके प्यारो, तुम स्वर्गलोकके भागीदार बनो। क्योंकि जब मैं भूखा था, तुमने मुझे भोजन कराया; और प्यासा था, तो तुमने पानी पिलाया; और जब मैं यात्री था, तुमने मुझे अपने घरमें जगह दी थी – टिकाया था। और मुझे निर्वस्त्र देखकर तुमने वस्त्र दिये थे; जब मैं बीमार था और क़ैद था, तुमने मेरी सुश्रूषा की थी।"

इस पर भक्त आश्चर्यसे पूछेंगे: "हे भगवन्, कब तुम भूखे थे और हमने तुम्हें भोजन कराया, प्यासे थे और पानी पिलाया? और कब हमने तुम्हें अजनबी समझकर घरमें टिकाया, और निर्वस्त्र देखकर वस्त्र दिये? और कब हमने बन्दीगृहमें और बीमारीमें तुम्हारी सुश्रूषा की?"

तब राजा कहेगा: "तुमने मेरी प्रजाके छोटे-से-छोटे जीवके लिए जो किया था, सो मेरे लिए ही किया था।"

और अ-भक्तोंसे वह कहेगा : "तुम यहाँसे चले जाओ, और नरककी आहुति बन जाओ। क्योंकि मैं तुम्हारे घर भूखा होकर गया, किन्तु तुमने मुझे भोजन नहीं दिया; जब मैं प्यासा था, तुमने मुझे पानी नहीं पिलाया; अनजान था, तुमने आश्रय नहीं दिया; निर्वस्त्र देखकर ओढ़ाया नहीं; जब मैं बीमार था और बन्दी था, मेरी सुश्रूषा नहीं की।"

इस पर वे अ-भक्त पूछेंगे : "देव, तुम कब हमारे पास भूखे, प्यासे, अनजान, निर्वस्त्र, बीमार और बन्दी आदि बनकर आये थे, और हमने तुम्हें खिलाया, पिलाया, टिकाया, ओढ़ाया या सँभाला नहीं?"

तब राजा कहेगा : "मेरी प्रजाके छोटे-से-छोटे जीवके लिए तुमने जो न किया, वह मेरे लिए ही न किया।"

इस प्रकार वे अनन्त यातना भोगेंगे, और भक्त अनन्त जीवन।

६. शापके सम्बन्धमें

एक बार एक गाँवने ईशुका सत्कार न किया। इस पर उसके दो शिष्योंने चाहा कि वे उस गाँवको शाप दें। उनको रोकते हुए ईशुने कहा :

मानव-पुत्रका अवतार मानवोंके जीवनका नाश करनेके लिए नहीं, बचानेके लिए है।

७. योग्य अतिथि

यदि तुम्हें दावत देनी है, तो तुम अपने रिश्तेदारों और धनी मित्रोंको दावत न दो, क्योंकि वे बदलेमें तुम्हें दावत देंगे। अतएव तुम उन ग़रीबों, लूलों, लँगड़ों और अन्धोंको दावत दो, जो तुम्हें बदलेमें जिमा न सकें। ताकि ईश्वर तुम्हें उसका बदला दे सके।

८. भक्तिका अनुमानपत्रक

माता, पिता, स्त्री, पुत्र, भाई, बहन और अपने प्राणों तकका मोह छोड़े बिना कोई मेरा शिष्य नहीं बन सकेगा। अपना क्रूस अपने ही कन्धे पर लादकर तुम मेरा शिष्यत्व कर सकोगे।

अतएव जिसे मेरा अनुसरण करना हो, उसको आगा-पीछा सब अच्छी तरह सोच-समझ लेना चाहिये। एक मीनार बनानेके लिए तुम्हें बैठकर उसका हिसाब करना पड़ता है, और खर्चका अन्दाज निकालना

पड़ता है। क्योंकि बिना हिसाब किये काम शुरू कर देने पर, यदि वह पूरा न हो सका, तो तुम्हारी फ़ज़ीहत होती है।

किसी राजाको दूसरे किसी राजा पर चढ़ाई करनी हो, तो अपने और उसके बलाबलका विचार किये बिना वह चढ़ाई करेगा क्या? अगर उसके पास दस हज़ार सेना है, तो वह बीस हज़ारवालेसे लड़ने न जायगा। बल्कि अपने एलचीके साथ संधिका सँदेशा भेजेगा।

इसी प्रकार बिना पूरा-पूरा हिसाब किये, जब तक सर्वस्वत्यागकी तैयारी न हो, मेरे पीछे न लगना।

९. निष्काम सेवा

तुम्हारा कोई ग़ुलाम सारा दिन भेड़ चराकर या खेतीका काम करके शामको घर आवे, तो क्या तुममेंसे कोई उसे यह कहता है: "तू थका-माँदा आया है, इसलिए मुझसे पहले खा ले?" मैं मानता हूँ कि अक्सर तुम उसे यही कहते होगे, कि चल साफ़-सूफ़ होकर रसोई तैयार कर और मुझे परस। मैं खा-पी चुकूँ, फिर तू भी खा-पी लेना।" और ग़ुलामके यह सब कर देने पर भी उसका आभार नहीं मानते होगे। और वह ग़ुलाम भी वैसी आशा नहीं रखता होगा।

इसलिए तुम भी प्रभुके जिन नियमोंको पालो और जो सेवा करो, सो अपना कर्त्तव्य समझकर ही करना। उसके बदलेमें कृतज्ञताकी या पुरस्कारकी आशा न रखना।

१०. परिग्रही धनिक

एक धनवान आदमीकी ज़मीनमें बहुत अनाज पैदा हुआ। उसने सोचा: "अब मैं इस सारे अनाजका क्या करूँ? मेरे पास इसे रखनेकी भी जगह नहीं है। अतएव मैं अपने पुराने कोठार तोड़कर उनकी जगह बड़े कोठार बनाऊँगा और उनमें यह सारा अनाज भरकर रक्खूँगा।" और वह फिर सोचने लगा: "हे जीव, अब तुझे बरसोंकी बेफ़िकरी हो गई। अब तू सुखसे खा-पी और मौज कर।"

लेकिन भगवान्‌ने उससे कहा: "हे मूर्ख, तेरी उम्र समाप्त हो चुकी है, और आज रात ही में तेरा प्राणान्त हो जानेवाला है। फिर तेरा यह सारा संग्रह किसके काम आयेगा?"

जो ईश्वरके सिवा दूसरी सम्पत्तिका संग्रह करते हैं, उन सबकी यही दशा होती है।

इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम अपने खाने-पहननेकी चिन्ता न करना। जीवन अन्न और वस्त्रसे अधिक महत्त्वकी वस्तु है। इन कौओंको देखो; ये न बोते हैं, न लुनते हैं; न कोठार बाँधते हैं; न कोठियाँ रखते हैं। किन्तु भगवान् इन्हें खिलाता है। क्या इन कौओंकी तुलनामें तुम अधिक मूल्यवान नहीं हो?

और इस हरियालीको देखो। यह कैसे उगती है? यह न कातती है, न बुनती है। फिर भी सम्राट सोलोमनका वैभव इस हरियालीके वैभवकी तुलनामें नगण्य था। जो घास आज खेतमें है, और कल भट्टीमें जलनेवाली है, उसे भी जब ईश्वर इतना सौंदर्य प्रदान करता है, तो उस पर विश्वास रक्खो। वह जानता है कि तुम्हें किस चीज़की ज़रूरत होगी। तुम तो सिर्फ़ यही सोचो कि तुम्हें परमात्माके यहाँ क्या जमा कराना है। जो कुछ तुम्हारे पास हो, सो तुम दे डालो। और अपने पास ऐसी थैलियाँ रक्खो कि जो कभी फटें नहीं, और उनमें वह धन भरो, जो कभी खूटे नहीं, सड़े नहीं, या चोरके हाथमें पड़े नहीं।* और, याद रक्खो कि जहाँ तुमने अपना धन रक्खा होगा, वहीं तुम्हारा मन भी चिपका रहेगा।

११. अविवेकी अतिथि

एक आदमीने बहुत बड़ी दावत दी और उसमें बहुतेरे आदमियोंको न्योता। फिर कुछ आदमी वहाँ जाकर बिना कहे अच्छी-अच्छी जगहों पर बैठ गये, और कुछ जो सयाने थे, नीचेकी जगहोंमें बैठे। बादमें जब घरका मालिक सबसे मिलने आया, तब प्रतिष्ठित आदमियोंको बैठानेके

* देखिये :

गिरधारी रे सखी गिरधारी।
मारे निर्भय अखूट नाणुं गिरधारी।
खरच्युं ना खूटे, एने चोर ना लूंटे; दामनी पेठे ए गांठे बांध्युं ना छूटे. १
अनगण नाणुं संची अन्ते निर्धनियां जाये; तेनी पेठे निर्भय नाणुं दूर ना थाये. २
संपत विपत सर्वे सुपनुं जाणुं, हरिना चरणनी सेवा पूरण भाग्य परमाणुं. ३
मुक्तानंद कहे, मो॰ नवरने उरमां धारी, हवे दुःख ने दारिद्रय थकी थई हुं न्यारी. ४

लिए उसे कुछ अच्छी जगह बैठे हुए आदमियोंको उठाना पड़ा और उन्हें नीचेकी तरफ भेजना पड़ा; जब कि कुछ नीचे बैठे हुओंको वह आग्रहपूर्वक ऊपर ले गया। अतएव जिन्हें नीचे आना पड़ा वे मन-ही-मन लज्जित हों, और जो आग्रहपूर्वक सम्मानके स्थान पर बैठाये गये, वे प्रसन्न हों, तो आश्चर्य क्या?

अतः जो नम्र होता है, वही ऊपर चढ़ता है।

३

रूपक

१. खेतकी बोनी

एक किसान[१] खेत बोने चला। बोते-बोते कुछ बीज[२] खेतके बाहर रास्ते पर[३] पड़ गये; और पक्षी[४] आकर उन्हें कुछ ही देरमें उठा ले गये।

दूसरे कुछ बीज मुरमवाली ज़मीनमें[५] जा पड़े। वहाँ ज़मीन गहरी न थी। बीज जल्दी उग आये, लेकिन नीचे मिट्टी न होनेसे जड़ें जम न सकीं और सूर्यके तापमें वे जल गये।[६]

और कुछ बीज बाड़में[७] जा गिरे। वे उगे, लेकिन उनके साथ काँटोंकी बाड़ भी बढ़ी। और, बाड़ने उन्हें दबा डाला।

लेकिन कुछ बीज अच्छी जुती हुई ज़मीनमें[८] गिरे, और वे अच्छे उगे, और उनमें कई एकके सौ हुए, कई साठ और कई तीस।

२. गेहूँ और घास

एक किसानने[९] अपने खेतमें[१०] ऊँची जातके गेहूँ[११] बोये थे। लेकिन जब उसके आदमी सो गये, तो दुश्मनोंने[१२] आकर उसमें मोटी घासके बीज[१३] डाल दिये।

---

१. सद्गुरु। २. उपदेश। ३. मूर्खके कान पर। ४. कुवासनायें। ५. दुर्बल मनवाले लोग। ६. विडम्बनाओंके सामने टिक न सके। ७. सांसारिक चिंतायें और समृद्धि। ८. दृढ़ मनवाले मुमुक्षु। ९. सद्गुरु। १०. जगत्में। ११. सदुपदेश। १२. शैतान, कलि, मार। १३. दुष्टोपदेश।

अतएव गेहूँके साथ खेतमें मोटी घास भी उग आई।

यह देखकर नौकरोंने कहा: "मालिक, हमने तो गेहूँ बोये थे, यह घास कहाँसे आ गई?"

किसानने कहा: "यह किसी दुश्मनकी करतूत मालूम होती है।"

इस पर नौकरोंने पूछा: "हम इस घासको नींद डालें?"

किसानने कहा: "नहीं। इस घासको नींदनेसे साथमें गेहूँ भी उखड़ आयेंगे। अतएव अब फ़सलके पकने तक दोनोंको बढ़ने दो।"

फिर कटनीके वक़्त उसने काटनेवालोंसे कहा: "पहले तुम मोटी-मोटी घासको डण्ठलके[1] साथ काट लो और उसके पूले बाँधकर उन्हें जला डालो। फिर गेहूँ[2] इकट्ठा करके खलिहानमें[3] ले जाओ।

३. अपराधी कारभारी

एक बार पिटरने ईशुसे पूछा: "हम दूसरोंको कितनी बार माफ़ करें? सात बार?" ईशुने कहा: "सत्तर गुना सात बार।" और उसने नीचे लिखा रूपक सुनाया:

एक राजाके दरबारमें बहुतसे कारभारी थे। एक दिन जब राजाने उनका हिसाब देखा तो मालूम हुआ कि एक कारभारीके नाम राजाका दस हज़ार मुहर क़र्ज़ निकलता है। राजाने हुक्म दिया कि कारभारी क़र्ज़ अदा कर दे। लेकिन वह अदा न कर सका। तब राजाने उसके स्त्री-पुत्रोंको जेलखानेमें बन्द कर देनेका हुक्म दिया। इस पर कारभारी रो पड़ा और राजाके पैरोंमें गिरकर गिड़गिड़ाने लगा, और नौकरी करके सारी रक़म चुका देनेका वचन दिया। राजाको दया आ गई। उसने उसे माफ़ कर दिया और फिर काम पर रख लिया।

फिर एक बार उस कारभारीके अपने एक गुमाश्तेसे सौ रुपये लेने निकले। कारभारीने इन रुपयोंकी वसूलीके लिए उसे पीटा और उसका गला पकड़कर उसे धमकाते हुए कहा: "अभी, इसी वक़्त, मेरे रुपये चुका दे।" लेकिन गुमाश्ता बेचारा दे नहीं सकता था। वह पैरों पड़कर

---

१. दुष्टोपदेशको धारण करनेवाले। २. सदुपदेशको धारण करनेवाले। ३. ईश्वरका धाम।

गिड़गिड़ाने लगा : "मुझे थोड़ी मुहलत दीजिये; मैं नौकरी करके सब चुका दूँगा ।" लेकिन कारभारीको दया नहीं आई । उसने उसे जेलखाने भेजवा दिया ।

जब राजाको इस बातका पता चला, तो उसने कारभारीको बुलाया और कहा : "अरे दुष्ट, तेरा गिड़गिड़ाना सुनकर मैंने तेरा सब क़र्ज़ माफ़ कर दिया, लेकिन तुझे अपने साथी पर एक नकुछ-सी रक़मके लिए भी दया न आई ? तू दयाका हक़दार नहीं है; इसलिए जब तक तू मेरा क़र्ज़ नहीं चुकाता, मैं तुझे कोतवालके हवाले करता हूँ ।"

चुनाँचे अगर तुम अपने अपराधियोंको माफ़ न करोगे, तो भगवान् भी तुम्हारे साथ वैसा ही बरताव करेगा ।

४. एक-सी मज़दूरी

एक ज़मींदारने अंगूरका बग़ीचा लगाया था । जब अंगूर तैयार हो गये, तो वह सुबह-सुबह मज़दूरोंको बुलाने चौकमें गया ।

वहाँ उसे जो मज़दूर मिले, उनसे एक आना रोज़की मज़दूरी तय करके उसने उन्हें बग़ीचेमें काम करने भेजा ।

तीन घण्टे बाद* वह फिर चौकमें गया । वहाँ उसने देखा कि कई मज़दूर कामकी तलाशमें बैठे हैं । उसने उनसे कहा : "तुम बग़ीचेमें जाओ, जो वाजिब होगा, तुम्हें दिया जायगा ।"

इसी तरह वह छठे और नवें घण्टे पर भी चौकमें गया, और उस समय भी जो मज़दूर मिले उनसे वाजिब देनेका वादा करके उन्हें काम पर भेजा ।

इसके बाद ग्यारहवें घण्टे पर वह फिर चौकमें गया । उस वक़्त भी उसने वहाँ बहुतेरे आदमियोंको निकम्मा बैठा पाया । उसने उनसे पूछा : "तुम निकम्मे क्यों बैठे हो ?"

लोगोंने कहा : "आज हमें काम नहीं मिला ।"

इस पर ज़मींदार बोला : "जाओ, मेरे बग़ीचेमें जा कर काम करो । जो वाजिब होगा, मैं तुम्हें दूँगा ।"

---

* अर्थात् सूर्योदयके बाद ।

जब शाम हुई तो उसने कारिन्देको बुलाकर कहा : "अन्त-अन्तमें आये हुए मज़दूरोंसे लेकर शुरू तकके सबको एक-एक आना चुका दो। इस तरह ठेठ ग्यारहवें घण्टेमें आये हुए मज़दूरको भी एक आना दिया गया। इसलिए पहले आनेवालोंने सोचा कि उन्हें ज़्यादा मज़दूरी मिलेगी।

लेकिन जब उन्हें भी एक ही आना मिला, तो वे शिकायत करने लगे और बोले : "यह कैसा अन्याय है ! हमने सारा दिन धूपमें काम किया, तो भी हमें उतनी ही मज़दूरी मिलती है, जितनी अख़ीर-अख़ीरमें आनेवालेको मिली है !"

इस पर ज़मींदारने उनसे कहा : "भाई, मैंने तुम्हारी मज़दूरी तो कम नहीं न की ? मैंने तुमसे एक ही आना तो ठहराया था न ? तुम अपने हक़की चीज़ लो, और रास्ता पकड़ो। मैं तो अख़ीरमें आनेवालोंको भी तुम्हारे बराबर ही दूँगा। क्या मुझे हक़ नहीं है कि मैं जैसा चाहूँ, अपने धनका उपयोग करूँ ? यह कैसी बात है कि 'दातारी दे और भण्डारी पेट कूटे ?'

इसी प्रकार ईश्वरके दरबारमें अन्त-अन्तमें आनेवाला प्रथम माना जाता है, और प्रथम आया हुआ अन्तिम। क्योंकि आनेवाले बहुत हैं, लेकिन अनुग्रहके अधिकारी बिरले ही होते हैं।

५. आज्ञाधारक और आज्ञापालक पुत्र

एक आदमीके दो लड़के थे। एक दिन उसने दोनोंको बुलाकर कहा : "जाओ, बाड़ीमें जाकर काम करो।" लेकिन एकने कहा : "मैं नहीं जाऊँगा।" किन्तु बादमें उसे पश्चात्ताप हुआ और वह जाकर काम करने लगा। दूसरेने कहा : "जो आज्ञा, पिताजी।" लेकिन वह काम पर नहीं गया।

कहिये, दोनोंमेंसे पिताकी आज्ञाका पालन किसने किया ? जो इनकार करके भी पछताया और काम करने गया उसने, या स्वीकार करके भी जो काम पर न गया उसने ?

इसी प्रकार जो पहले सन्मार्ग पर जानेसे इनकार करे और फिर पश्चात्ताप-पूर्वक जाय, और जो सन्मार्ग पर चलनेका वचन देकर भी न चले, उन दोनोंमें साधु कौन कहा जायगा ?

६. दुष्ट पत्तीदार

एक ज़मींदारने[१] अंगूरके[२] बड़े-बड़े बग़ीचे लगाये और उनके चारों ओर बागुड़ खींच दीं। बग़ीचेके बीचमें उसने द्राक्षासवका एक कारख़ाना भी खड़ा किया। इसके बाद उसने उन बग़ीचोंको पट्टी पर उठा दिया, और .ख़ुद विदेश चला गया।

बादमें जब अंगूर तैयार हुए, तो उसने अपने नौकरोंको[३] माल इकट्ठा करने भेजा। पत्तीदारोंने उन नौकरोंमेंसे कुछको पीटा, कुछके प्राण लिये और कुछके हाथ-पैर तोड़े।

यह सुनकर ज़मींदारने और ज़्यादा आदमी भेजे। लेकिन् किसानोंने उनकी भी वही दशा की।

यह देख कर ज़मींदारने अपने पुत्रको[४] जाँच करने भेजा। किसानोंने सोचा: "अब तो ज़मींदारका वारिस ही आया है। आओ, हम इसे भी मार डालें, ताकि सब बग़ीचे हमारे हो जायँ।"

यह सोचकर उन्होंने ज़मींदारके बेटेको सूली पर चढ़ा दिया।

तब तो ज़मींदार .ख़ुद वहाँ गया। जानते हो, उसने उन किसानोंके साथ क्या किया?

सुननेवाले: "उसने उन्हें कड़ी-से-कड़ी सज़ा दी होगी, और उनको बग़ीचोंसे निकालकर बग़ीचे दूसरे अच्छे किसानोंको सौंपे होंगे।"

ईशु: "तो अब सोच लो कि जो लोग सन्तोंकी बात नहीं सुनते और उन्हें सताते हैं, भगवान् उनके क्या हाल करेगा?"

७. अभिमानी मेहमान

एक सेठने[१] दावत दी और उसमें बहुतसे लोगोंको निमंत्रित किया। जब खानेका वक़्त हुआ, तो लोगोंको बुलौवा भेजा गया।

लेकिन लोगोंने[५] एका कर लिया और बहाना बनाने लगे। एकने कहा: "माफ़ कीजिये, मुझे तो आज खेत पर जाना है, बिना गये काम न चलेगा।" दूसरेने कहा: "मैंने नये बैल ख़रीदे हैं, उन्हें जोतकर देखना है; मुझे माफ़ कीजिये।" तीसरेने कहा: "माफ़ कीजिये, मुझे आज गौना कराने जाना है।"

---

१. भगवान्। २. दुनिया। ३. संत और पैग़म्बर। ४. ख्रिस्त। ५. दुनियादारी आदमी।

नौकरोंने[1] आकर सेठको सब क़िस्सा सुनाया। इस पर सेठको .गुस्सा आ गया, और उसने नौकरोंको हुक्म दिया: "जल्दी जाओ, और रास्ते-रास्ते और गली-गलीमें घूम आओ: जितने ग़रीब, लूले, लँगड़े और अन्धे आदमी[2] मिलें, उन सबको बुला लाओ।"

नौकर सेठका हुक्म बजा लाये और आकर कहने लगे: "अभी तो बहुत गुंजाइश है।" सेठने फिर कहा: "अब तुम गाँवके बाहर रास्तों पर और जंगलोंमें जाओ और वहाँ जो मिलें, उन्हें बुला लाओ और उनसे मेरा घर भर दो। निमंत्रितोंमेंसे किसीको भी मैं अपनी रसोई चखाना नहीं चाहता।"

८. ग़ाफ़िल नौकर

एक सेठ था। उसने अपने नौकरोंको हुक्म दिया: "जब मैं लौटकर आऊँ, सारा काम व्यवस्थित मिलना चाहिये; जिसका काम व्यवस्थित होगा, उसे मैं ऊँचा ओहदा दूँगा।"

फिर कुछ नौकर तो यह सोचकर कि सेठ किसी भी वक़्त आ सकते हैं, अपने घरको हमेशा सजा-सजाया रखते थे और रसोई भी तैयार रखते थे।

लेकिन दूसरे कुछ नौकरोंने यह सोचा अभी इतनी जल्दी सेठ क्यों आने लगे? जब आयेंगे, तब सब कर डालेंगे, और वे आलस्यमें समय खोने और मौजमज़ा करने लगे।

लेकिन एक दिन सेठ उनके यहाँ अचानक ही जा पहुँचे, और देखा तो किसी बातका ठिकाना न था।

तब सेठने उन्हें सज़ा दी और नौकरीसे हटा दिया।

९. चतुर और मूर्ख कन्यायें

एक गाँवमें दस कन्यायें थीं। और वे सब एक ही वरसे ब्याह करना चाहती थीं। और, वह वर किसी भी समय उनके यहाँ आ सकता था।

एक दिन वे दसों कन्यायें अपने दीये जलाकर वरकी अगवानीके लिए निकलीं।

---

१. संत। २. दीन और दुखी।

उनमें पाँच कन्यायें सयानी थीं, और पाँच मूर्ख। सयानी कन्याओंने अपने साथ तेलकी कुप्पियाँ भी ले लीं, ताकि जब दीयेमें तेल न रहे, तो नया डाला जा सके।

लेकिन जो मूर्ख थीं, उन्होंने तेल न लिया।

और जब वरके आनेमें देर हुई, तो वे सभी रास्तेमें ही सो गईं।

इतनेमें आधी रातको पुकार मची कि वर आ पहुँचा।

यह सुन वे सभी अपने-अपने दीयोंकी बत्तियोंको सँकोरने लगीं। और मूर्ख कन्यायें सयानी कन्याओंसे कहने लगीं: "हमें अपने पाससे थोड़ा तेल दो।"

इस पर सयानी कन्याओंने कहा: "अगर हम अपना तेल तुम्हें दे देंगी, तो हमारे दीये बुझ जायँगे। तुम बाज़ारसे तेल ले आओ।"

इस पर वे पाँच मूर्ख कन्यायें तेल लेने बाज़ार गईं।

लेकिन इस बीच वर आ पहुँचा और जो कन्यायें तैयार थीं, उन्हें लेकर वह विवाह-मन्दिरमें गया। फिर मन्दिरके द्वार बन्द कर दिये गये।

इतनेमें मूर्ख कन्यायें आ पहुँची और कहने लगीं: "हे नाथ, द्वार खोलो, और हमें अपनाओ।"

लेकिन वरने कहा: "तुम लौट जाओ, मैं तुम्हें नहीं पहचानता।"

इसलिए किसीको ग़ाफ़िल न रहना चाहिये। परमेश्वरका पैग़ाम और उसकी परीक्षा किस क्षण आ पहुँचेगी, कोई कह नहीं सकता।

१०. कुशल और अकुशल मुनीम

एक सेठ था। उसे परदेश जाना था। उसने अपने मुनीमोंको बुलाया और उनमेंसे एकको पाँच मुहरें, दूसरेको दो मुहरें और तीसरेको एक मुहर देते हुए कहा कि जब वह लौटकर आयेगा, इनका हिसाब पूछेगा।

फिर मुनीमोंमेंसे जिन्हें पाँच और दो मुहरें मिली थीं, उन्होंने उन मुहरोंकी मददसे व्यापार किया और दोनोने क्रमसे पाँच और दो मुहरोंका मुनाफ़ा कमाया।

लेकिन तीसरे मुनीमने अपनी मुहरको एक कोनेमें गाड़ दिया और आरामसे रहने लगा।

फिर कई दिनों बाद जब सेठ लौटकर आया तो उसने हरएकसे हिसाब पूछा। तब पहले दो मुनीमोंने सेठकी दी हुई पाँच और दो मुहरोंके साथ क्रमसे मुनाफ़ेकी पाँच और दो मुहरोंका हिसाब पेश किया।

यह देखकर सेठ राज़ी हुआ और उसने उनसे कहा: "छोटी-सी रक़मका उपयोग करनेमें तुमने अपनी प्रामाणिकता और कुशलताका परिचय दिया है, इसलिए मैं तुम्हें अपना भागीदार बनाता हूँ।"

फिर तीसरे मुनीमकी बारी आई। उसने कहा: "सेठ, मैं जानता हूँ कि तुम बहुत कड़े मिजाज़के आदमी हो; जहाँ बोते नहीं, वहाँ लुनते हो, और जहाँ फैलाया नहीं, वहाँ समेटते हो। इसलिए मैं डरा और मैंने तुम्हारी मुहर गाड़कर रक्खी। यह रही वह मुहर।"

इस पर सेठने कहा: "अरे दुष्ट और आलसी मनुष्य! तू जानता है कि मैं जहाँ बोता नहीं, वहाँसे भी लुनता हूँ; और जहाँ फैलाता नहीं, वहाँसे भी समेटता हूँ, इसलिए तुझे मेरी मुहर ब्याजसे तो फिरानी थी, ताकि मुझे उसका ब्याज तो मिलता!"

"अब तू यह मुहर पहले आदमीको दे दे, ताकि उसके पास ग्यारह हो जायँ। क्योंकि जो भरता है, उसीको मैं भी भरता हूँ, और जो खाली करता है, उसमें जो होता है, सो भी निकाल लेता हूँ।"[1]

यों कह उसने मुनीमको सज़ा दी और नौकरीसे हटा दिया।

११. भला समेरियन

एक विद्वान्ने ईशुसे पूछा: "गुरुदेव, अनन्त जीवनका अधिकारी बननेके लिए मुझे क्या करना चाहिये?"

ईशु: "शास्त्रमें क्या कहा गया है?"

विद्वान्: "शरीर, मन और बुद्धिसे ईश्वरकी भक्ति करना, और अपने पड़ोसीको अपने समान ही समझना।"

ईशु: "ठीक कहा। बस, इसी तरह चलो, इससे तुम अनन्त जीवनके अधिकारी बन सकोगे।"

विद्वान्: "लेकिन मेरा पड़ोसी कौन है?"

---

१. जो सद्गुणी है, उसके सद्गुण बढ़ते ही जाते हैं। जो सद्गुणोंको घटाता है, उसके पास जो होते हैं, वे भी चले जाते हैं।

ईशु : "एक बार एक मुसाफ़िर चोरोंके हाथमें पड़ गया। उन्होंने उसे लूटा, नंगा किया, पीटा और क़रीब-क़रीब अधमरा-सा कर डाला। फिर उसे छोड़कर वे चले गये। इतनेमें एक पुजारी उधरसे निकला। मुसाफ़िरको वहाँ पड़ा देख, वह रास्तेकी बग़लसे चला गया। कुछ देर बाद एक और सज्जन उधर आ पहुँचे। वे भी उसे देखकर रास्तेकी बग़लसे चले गये। इसके बाद एक सैमेरियन (नीच जातिका यहूदी) उधरसे निकला। मुसाफ़िरकी दुर्दशा देखकर उसे दया आई। वह उसके पास गया। उसके घावोंको शराबसे धोया, तेल लगाया, उसे अपने खच्चर पर डालकर एक सरायमें ले गया और वहाँ उसकी सेवा-सुश्रूषा की।

"दूसरे दिन सुबह रवाना होते समय उसने सरायवालेके हाथमें कुछ पैसे दिये और कहा : "ज़रा इस आदमीकी सार-सँभाल रखना, और ज़्यादा खर्च हो तो मेरे खाते लिख लेना। मैं जब दुबारा आऊँगा, तो चुका दूँगा।"

अब कहो कि उन तीनोंमें उस लूटे गये मुसाफ़िरका पड़ोसी कौन था?

विद्वान् : "वही जिसने दया दिखाई।"

ईशु : "तो बस, इसी तरह तुम भी रहो"।

१२. आग्रही मित्र

एक आदमीके यहाँ रात बड़ी देरमें एक मेहमान आ पहुँचा। उस समय उसके घरमें खानेको कुछ बचा न था। इसलिए वह अपने एक मित्रके घर गया और दरवाज़ा खटखटाकर बोला: "मित्र मेरे घर एक मेहमान आया है। उसे खिलानेके लिए अपने यहाँसे तीन रोटी तो दे!"

लेकिन मित्रने बिछौनेमें पड़े-पड़े ही कहा: "आधी रातको मुझे परेशान न करो। मैंने दरवाज़े पर कुण्डी चढ़ा दी है। मेरे बच्चे मुझसे चिपट कर सोये हैं। अब मैं उठ नहीं सकता।"

किन्तु उसने उसे यों छोड़ा नहीं, बल्कि आग्रहपूर्वक कहा : "दरवाज़ा खोलकर मेहमानके लिए मुझे रोटी देनी ही होगी। जब तक तू उठेगा नहीं, मैं तुझे चैनसे सोने न दूँगा।"

इसलिए अन्तमें उसके मित्रको उठना ही पड़ा, और दरवाज़ा खोलकर रोटी देनी पड़ी।

इसी प्रकार अगर तुम आग्रहके साथ भगवान्‌के घरके द्वार खटखटाओगे, तो वे ज़रूर खुलेंगे ।

१३. अपव्ययी पुत्र

एक आदमीके दो लड़के थे । उनमेंसे छोटेने एक दिन अपने बापसे कहा : "मुझे मेरा हिस्सा दे दीजिये । मैं अलग होना चाहता हूँ ।" बापने वैसा ही किया । फिर छोटे लड़केने अपनी सारी जायदादके रुपये खड़े कर लिये और वह विदेश चला गया । विदेश जाकर उसने ख़ूब फ़ज़ूलख़र्चीसे काम लिया और सब कुछ खो डाला ।

इसी बीच वहाँ अकाल पड़ा । लड़का बड़ी मुहताजीमें आ गया और भूखों मरने लगा ।

इसलिए वह गाँवके एक सेठके घर नौकर हो गया । सेठने उसे अपने सुअर चरानेका काम सौंपा । लड़का सुअरोंको सानी-पानीमें दिये जानेवाले भूसेसे अपना पेट भरता । क्योंकि उसे दूसरा कुछ खानेको मिलता न था ।

अब वह मन-ही-मन पछताने और सोचने लगा : "मेरे बापके घर नौकरोंको भी रोटी मिलती है और उसके बाद भी बहुतेरी रोटी बच जाती है । लेकिन यहाँ तो मैं भूखों मर रहा हूँ ! क्यों न मैं वापस घर जाऊँ, और पिताजीके चरणोंमें गिरकर उनसे माफ़ी माँगूँ और कहूँ कि मैंने आपका बहुत अपराध किया है, मैं आपका लड़का कहलाने लायक़ तो नहीं रहा, लेकिन आप मुझे अपना नौकर बनाकर रखिये ।"

यह सोचकर वह घरकी तरफ़ चल पड़ा ।

बापने दूरसे देखा कि लड़का आ रहा है । देखते ही उसे उस पर दया आ गई, वह दौड़ा हुआ गया और उसे गले लगाकर ख़ूब-ख़ूब चूमा ।

लड़का पैर छूकर पितासे माफ़ी माँगने लगा, पश्चात्ताप करने लगा और बोला : "मैं आपका बहुत अपराधी हूँ, और आपका लड़का कहलाने लायक़ नहीं हूँ ।"

लेकिन बापने अपने नौकरोंको हुक्म दिया : "जाओ, इसके लिए घरमेंसे बढ़िया-से-बढ़िया कपड़े लाओ और इसे पहनाओ; अँगुलीमें अँगूठी

और पैरोंमें जूते पहनाओ; और, आज सबको भोजनके लिए न्योता दो, और अच्छी-से-अच्छी रसोई बनाओ । क्योंकि मेरा मरा हुआ बेटा फिर जी उठा है; मेरा खोया हुआ धन मुझे वापस मिला है ।"

इस समय उसका बड़ा लड़का खेत पर था । जब वह वापस घर आ रहा था, उसने दूरसे नाचने और गानेकी आवाज़ सुनी । इस पर उसने एक नौकरसे पूछा : "आज यह धूमधाम किस लिए है ?"

नौकरने कहा : "तुम्हारा भाई वापस आया है, पिताजी उसकी ख़ुशीमें उत्सव मना रहे हैं; उन्होंने आज अच्छी-से-अच्छी रसोई बनवाई है; क्योंकि वह सही-सलामत वापस आ गया है ।"

यह सुनकर बड़ेको बुरा लगा और वह घरमें न गया ।

इस पर बाप उसे समझाने आया ।

बड़ेने कहा : "मैं आज इतने बरसोंसे तुम्हारी सेवा कर रहा हूँ। कभी तुम्हारी एक भी आज्ञाका भंग नहीं किया । लेकिन तुमने एक दिन भी मेरे मित्रोंको खाने नहीं बुलाया । और तुम्हारे जिस बेटेने दुराचारमें अपनी तमाम दौलत बरबाद कर डाली, उसके आते ही तुमने इतना बड़ा उत्सव रच डाला ।"

यह सुन बापने कहा : "बेटा, तुम तो हमेशा मेरे साथ ही रहे हो । और जो कुछ मेरा है, सो सब तुम्हारा ही है । लेकिन आज मेरा यह उत्सव मनाना उचित है, क्योंकि यह तो जो मर गया था, वह फिर ज़िन्दा हुआ है; खो गया था, वह फिर मिला है ।"

१४. चालाक कारभारी

एक धनी आदमीने अपने यहाँ एक कारभारी रक्खा था । कुछ दिनों बाद धनीको पता चला कि कारभारी उसकी सम्पत्तिका प्रबन्ध ठीक-ठीक नहीं करता है । इस पर उसने कारभारीको बुलाकर कहा : "तुम्हारे बारेमें ये शिकायतें क्यों आती हैं ? मैं तुम्हारा हिसाब देखना चाहता हूँ और तुम्हें बरखास्त करना चाहता हूँ ।"

यह सुनकर कारभारी सोचने लगा : "अब मैं क्या करूँ ? अगर सेठ मुझे काम पर न रक्खेंगे, तो मेरा निर्वाह कैसे होगा ? क्योंकि मैं

कुदाली चला नहीं सकता, और भीख माँगते शरमाता हूँ। इसलिए मुझे ऐसी कोई तरकीब करनी चाहिये, जिससे नौकरी छूटने पर लोग मुझे अपने घरमें आश्रय दे सकें।"

यह सोचकर वह सेठके एक क़र्ज़दारके पास गया और उससे पूछा: "कहो, सेठका कितना क़र्ज़ तुम्हारे सिर है?" क़र्ज़दारने कहा: "सौ डिब्बे तेल।" इस पर कारभारी बोला: "चलो, जल्दी करो, और अपना आँकड़ा मुझे दिखाओ और उसमें सौके बदले ५० डिब्बे लिखो।"

इसी तरह वह एक दूसरे असामीके यहाँ गया, और उससे पूछा: "मेरे सेठका कितना क़र्ज़ तुम्हारे सिर है?" उसने कहा: "सौ मन गेहूँ।" इस पर कारभारी बोला: "लाओ, अपना आँकड़ा दिखाओ और उसमें अस्सी मन लिख डालो।"

जब सेठको इसका पता चला तो उसने कारभारीकी सराहना की; क्योंकि उसने अपने हितकी सिद्धिके लिए अक़्लसे काम लिया था। ऐसे मामलोंमें दुनियादार लोग भक्तोंकी अपेक्षा अधिक दक्ष होते हैं।

१५. क़ाज़ी और विधवा

एक नगरमें एक बड़ा क़ाज़ी रहता था। वह न ईश्वरसे डरता था, न आदमीसे। नगरमें एक ग़रीब विधवा रहती थी। उसने आकर एक आदमीके ख़िलाफ़ शिकायत की, और उसे सज़ा देनेकी बिनती की।

पहले तो क़ाज़ीने शिकायत सुनी-अनसुनी कर दी। लेकिन फिर वह सोचने लगा: "मुझे न ईश्वरका डर है, न मनुष्यका! लेकिन अगर मैं इस विधवाकी शिकायत पर ध्यान न दूँगा, तो यह रोज़ आकर मुझे सतायेगी।" यह सोचकर उसने उसकी शिकायत पर ध्यान दिया।

जब एक अन्यायी क़ाज़ी भी ऐसा करता है, तो क्या यह सम्भव है कि ईश्वर अपने भक्तोंकी रात-दिन उठनेवाली आर्त्तवाणीको न सुने और उनके अपराधियोंको दण्ड न दे?

१६. फ़ैरिसी और कार-कुन

एक दिन एक फ़ैरिसी और एक सरकारी कार-कुन, दोनों, एक साथ मन्दिरमें पहुँचे। वहाँ फ़ैरिसीने इस प्रकार प्रार्थना की: "हे भगवन्,

मैं तुम्हारा आभार मानता हूँ कि मैं दूसरोंकी तरह अत्याचारी, अन्यायी और व्यभिचारी नहीं हूँ और इस कार-कुनके समान पापी नहीं हूँ। मैं हफ़्तेमें दो दिन रोज़े रखता हूँ, और अपनी आमदनीका दसवाँ हिस्सा (दान-धर्ममें) खर्च करता हूँ।

उधर वह कार-कुन एक कोनेमें खड़ा होकर, आसमानकी ओर देखनेके बदले, शरम-सी लगती हो, इस तरह अपनी छाती पर आँखें झुकाकर प्रार्थना करने लगा: "हे भगवन्, इस पापी पर दया कर।"

निश्चय समझो कि उस फ़ैरिसीकी अपेक्षा इस कार-कुनकी प्रार्थना अधिक शुद्ध थी। जो अपनेको ऊँचा समझता है, वह नीचे गिरेगा, और जो नीचे रहेगा, वह ऊपर चढ़ाया जायगा।

१७. गडरिया

जो आदमी भेड़ों या गाडरोंकी झोंपड़ीके अंदर सीधे दरवाज़ेकी राह न जाकर किसी आड़े रास्ते जानेकी कोशिश करता है, वह उस झोंपड़ीका मालिक नहीं, चोर समझा जाता है। गाडरोंका मालिक तो सीधे रास्ते ही आता है, और नौकरसे दरवाज़ा खुलवाता है। वह अपनी हरएक भेड़को नाम ले-लेकर पुकारता है और बाहर निकालता है। वह भेड़ोंके आगे-आगे चलता है और भेड़ें उसका अनुसरण करती हैं। क्योंकि वे उसकी आवाज़को पहचानती हैं। वे अनजान आदमीके पीछे नहीं जातीं, बल्कि भाग खड़ी होती हैं। क्योंकि वे उसकी आवाज़को पहचान नहीं सकतीं।

मैं भी अपनी भेड़ोंका[1] मालिक हूँ। बहुतेरे चोरोंने इससे पहले आकर मेरी भेड़ोंको चुरानेकी कोशिश की। लेकिन मेरी भेड़ें उनके पीछे नहीं गईं।

पर मैं सच्चा गडरिया हूँ। मेरी भेड़ें मेरी आवाज़ पहचान कर मेरे पीछे आवेंगी। किन्तु जो मेरी न होंगी, वे मेरा अनुसरण न करेंगी।

मैं सच्चा गडरिया हूँ। सच्चा गडरिया अपनी भेड़ोंके लिए अपनी जान तक देता है। जब भेड़िया झपटता है, तो किरायेका नौकर भाग

---

१. भक्त।

खड़ा होता है, और भेड़िया भेड़ोंको पकड़ कर ले जाता है। लेकिन भेड़ोंका सच्चा मालिक अपनी जानको जोखिममें डालकर भी उनकी रक्षा करता है।

जो मेरी भेड़ें हैं, और जो मेरे पास आकर मेरी बनती हैं, वे जानती हैं कि मैं उनकी रक्षा अपने प्राण देकर भी करूँगा। वे मेरी आवाज़को पहचानेंगी।

लेकिन जो मेरी नहीं हैं, वे मेरी आवाज़ नहीं पहचानेंगी और मेरे पीछे नहीं आयेंगी।

१८. खोई हुई भेड़

तुम्हारे पास सौ भेड़ें हों, और उनमेंसे एक भेड़ रास्ता भूलकर जंगलमें रह जाय, तो तुममेंसे ऐसा कौन है, जो उसे ढूँढ़ने न जायगा, और उसके मिल जाने पर अपने पड़ोसियोंको यह .खुशख़बरी न सुना-येगा कि उसकी खोई हुई भेड़ उसे मिल गई ?

अथवा कौन ऐसी स्त्री होगी जो अपने दस रुपयोंमेंसे एक रुपयेके अँधेरेमें गिर पड़ने पर उसे दीया जलाकर ढूँढ़ने न निकलेगी, और अगर वह मिल जाय तो पड़ोसिनको यह .खुशख़बरी न सुनायेगी ?

इसी तरह जब एक पापी प्रायश्चित्त करके सन्मार्ग पर आ जाता है, तो ईश्वरके घर उस दिन अधिक आनन्द मनाया जाता है।

४

सुभाषित

ईशु द्वारा प्रयुक्त नीचे लिखे सुभाषित और दृष्टान्त यूरोपीय भाषाओंमें तुलसीदासके दोहों और चौपाइयोंकी तरह व्यापक हो गये हैं।

*　　　*　　　*

पुराने कपड़े पर नया पैबन्द नहीं लगाया जाता; क्योंकि उससे पुराने पर अधिक तान पड़ती है और वह अधिक फटता है।

इसी तरह (चमड़ेके) पुराने घड़ेमें नया द्राक्षासव नहीं भरा जाता; क्योंकि उससे घड़ा फटता और आसव बह जाता है।

*　　　*　　　*

ईश्वर जिस ज्ञानको बड़ोंसे छिपाता है, उसे बालकोंको देता है।

*　　　*　　　*

राज्यमें फूट हो तो राज्य नष्ट होता है; नगरमें हो तो नगर, और कुटुम्बमें हो तो कुटुम्ब।

शैतानके हाथों शैतानियतका नाश नहीं हो सकता।

*　　　*　　　*

जो ईश्वरका नहीं, वह उसका विरोधी ही कहलायेगा। जो साथ रहकर फ़सलको काटनेमें शरीक नहीं होता, वह फ़सलको कुचलनेवाला ही माना जाता है।

*　　　*　　　*

धनवानके लिए प्रभुके धाममें प्रवेश करनेकी अपेक्षा ऊँटका[1] सुईके नाकेमेंसे निकलना अधिक आसान है।

*　　　*　　　*

---

१. यूरोपियन भाषाओंमें यह कहावतकी तरह प्रचलित है। लेकिन मैंने कहीं पढ़ा है कि यहाँ मूलमें ऊँटके लिए जो शब्द प्रयुक्त हुआ है, उसका अर्थ 'रस्सी' भी होता है। यह अधिक युक्तिसंगत मालूम होता है।

दाम्भिकका धर्म चींटीको बचाकर ऊँटको पचानेके समान है; अथवा बरतनको बाहरसे माँजकर अन्दरसे गन्दा रखनेके समान है; अथवा बाहरसे पुती हुई मगर अन्दर मांस और हड्डियोंसे भरी हुई क़ब्रके समान है।

ये दाम्भिक अब अपने पूर्वजों द्वारा मारे गये सन्तोंकी क़ब्र पूजते हैं, लेकिन अपने समयके सन्तोंको अपने पूर्वजोंकी भाँति ही मार डालते हैं।

* * *

दिल रज़ामन्द है, मगर मिट्टी कमज़ोर है।[1]

* * *

चिराग़ जलाकर कोई उसे चारपाईके नीचे छिपाता नहीं, बल्कि ऐसे स्थान पर रखता है, जहाँसे सब तरफ़ प्रकाश पड़े। इसी तरह ज्ञान छिपानेके लिए नहीं होता।

* * *

अगर नमक ही अपना स्वाद छोड़ दे, तो उसे नमकीन कैसे बनाया जाय? इसी तरह जो मुखिया हैं, वे ही अगर कमज़ोर पड़ जायँ, तो क्या किया जाय?

* * *

सन्त अपने घरमें नहीं पूजा जाता।

* * *

ईश्वरकी इच्छा होने पर निकम्मा माना जानेवाला पत्थर भी मन्दिरके शिखर पर जा चढ़ता है।

* * *

विपुलतामेंसे दिया गया दान अभावमेंसे दिये गये दानके सम्मुख नगण्य है।

* * *

ईश्वरके यहाँ वही श्रेष्ठ और वही अगुआ है, जिसकी परिचर्या और सेवा सबसे अधिक है।

---

१. यह उक्ति भी कहावतकी तरह प्रचलित है। जब कोई आदमी दिलसे किसी कामको करना चाहता है, लेकिन मनकी दुर्बलताके कारण हिम्मत नहीं कर पाता, तब इसका प्रयोग किया जाता है।

(एक आदमीने ईशुके पास आकर कहा कि वह अपने घरका प्रबन्ध करके उसका साथी बनना चाहता है। ईशुने उससे कहा:)

जो आदमी हल पर हाथ रखनेके बाद पीछे मुड़ कर देखता है, वह ईश्वरके धामका अधिकारी नहीं बन सकता।

* * *

पढ़े-लिखों और सयानोंसे ईश्वर जो छिपाता है, सो बालकोंको दिखाता है।

* * *

कौन ऐसा बाप होगा जो रोटी माँगने पर बेटेको पत्थर दे? अथवा मछली माँगने पर साँप दे? और अण्डा माँगने पर बिच्छू? इसलिए भगवान् इससे भी आगे बढ़े, तो उसमें आश्चर्य क्या? तुम नाशवान चीज़ें माँगोगे, तो भी वह (तुम्हें) अविनाशी चीज़ देगा।

* * *

जो तलवार उठायेगा, वह तलवार ही से मरेगा।

* * *

अगर मालिकको चोरके आनेका ठीक समय मालूम हो जाय, तो वह चोरी न होने दे, लेकिन कोई समय निश्चित करके यह कह नहीं सकता कि इसी समय चोरसे सावधान रहना!

* * *

ईश्वरका धाम न आँखसे देखा जा सकता है, न अँगुलीसे दिखाया जा सकता है। वह तुम्हारे अन्दर ही है।

* * *

बिना पुनर्जन्मके ईश्वरके धाममें पहुँचा नहीं जा सकता। शरीरसे शरीर उत्पन्न होता है। आत्मासे आत्मा। पुनर्जन्म शरीरका नहीं होता, आत्माका होता है (ज्ञान और श्रद्धा द्वारा)।

ईशु ख्रिस्त

खण्ड–३

समालोचना

समालोचना

१

हिन्दू, मुसलमान, पारसी आदि धर्मोंमें ईश्वरपरायणता, श्रद्धा, भक्ति, तप, संयम, जीवदया आदिका अकाल नहीं। उनमें ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग (अर्थात् वर्णाश्रमधर्मका पालन अथवा अनासक्तिपूर्वक सांसारिक प्रवृत्तियोंका आचरण), राजयोग, हठयोग, मंत्रयोग, तंत्रयोग, संन्यासयोग आदि अनेक प्रकारके योगोंका अस्तित्व है। इन सबका ध्येय उन-उन योगों द्वारा ईश्वर-प्राप्ति ही है। उनमें व्यक्तिगत और सार्वजनिक दान-धर्मकी भी कमी नहीं। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि दुःखी, दलित, पतित, त्यक्त अथवा अबूझ (अनपढ़-अज्ञान) मानवोंकी स्वयं, प्रत्यक्ष ऐहिक सेवा करके और उन्हें परमात्माके पथकी ओर मोड़कर उसके द्वारा ईश्वरकी आराधना करनेका ईश-मानव-सेवायोग हिन्दू, मुसलमान आदि धर्मोंने विकसित किया है। अगर यह कहा जाय कि इस तरफ़ उनका ध्यान ही नहीं गया, तो इसमें उनकी निन्दा करने-जैसी कोई बात न होगी। कहना चाहिये कि ख्रिस्ती धर्मकी यह एक विशेषता है।

प्रत्येक मनुष्य या जातिकी तरह, प्रत्येक धर्मकी अपनी एक विशिष्ट प्रकृति बन जाती है। धर्मके मूल संस्थापकसे लेकर उसके बड़े-बड़े अनुयायियों तकके जीवनमें वह प्रबल रूपसे दिखाई पड़ती है। प्रायः ऐसा भी होता है कि उस धर्मका कुछ अंश अपनाये बिना दूसरोंको वह प्रकृति प्राप्त नहीं होती। उसको अपनाते ही अनुयायीमें उसका उदय होने लगता है, और प्रयत्न करनेसे वह विकसित होती है। ईशुका अपना यह एक विशिष्ट स्वभाव था कि वह मनुष्यों तथा प्राणियोंके (ऐहिक) संकटों और अज्ञानको मिटाता और अपने माने हुए सत्यके प्रचारके लिए उत्कट प्रयत्न करता था; उसके बड़े-बड़े अनुयायियोंमें भी उसका यह स्वभाव पाया जाता है। अब तक उसकी यह प्रवृत्ति बराबर पुष्ट होती आई है। ईशुको ईश्वर-पुत्र और मानव-पुत्रकी दोहरी उपाधि देनेमें उसकी

इस विशेषताका भी संकेत रहा है। जो ईशुको अपना तारनहार समझता है, उसके लिए इन दोमेंसे एक का स्वीकार और दूसरीका त्याग उतना ही कठिन है, जितना कपूरके लिए अपनी सुगन्धी और कोमलता छोड़कर भी कपूर बने रहना।

२

हमारे देशमें सबसे पहले ईसाई धर्मकी स्थापना हज़ार या उससे भी अधिक वर्षों पहले दक्षिण भारतके तामिल, केरल आदि प्रांतोंमें हुई थी। उसका सम्बन्ध सीरियाकी ख्रिस्ती गादी (चर्च) के साथ था। इसके बाद सोलहवीं सदीमें जब पश्चिमी हिन्दुस्तानमें फिरंगियोंके अड्डे क़ायम हुए, तब एक बार फिर उसका प्रचार ज़ोरोंसे हुआ। उसमें कुछ काम उपदेशसे हुआ, और कुछ साम, दाम, दण्ड, भेदके उपायों और राज्याश्रयकी मददसे हुआ। इन ख्रिस्तियोंका सम्बन्ध रोमकी गादीके साथ था। धीरे-धीरे इन दोनों गादियोंके ईसाई रहन-सहन और रूढ़ियोंमें भी अधिकांश हिन्दुओंके सदृश ही बन गये।

फिर अंग्रेज़ोंके शासन-कालमें यूरोप-अमेरिका आदि अनेक देशों और अनेक पन्थोंके पादरी सारे देशमें फैल गये। राज्यकी सहायता उन्हें प्राप्त थी ही। ख्रिस्ती धर्मका प्रचार ही उन सबके जीवनका मुख्य ध्येय था। लेकिन उसके निमित्त साधनके रूपमें उन्होंने अनेक प्रकारकी मानव-सेवाका आयोजन किया। उदाहरणार्थ, अस्पताल, औषधालय, कोढ़ियोंकी सेवा, स्कूल, कॉलेज, उद्योगालय, अछूत, दलित आदि जातियोंका उद्धार, आर्थिक संकट-निवारण आदि-आदि। भारतीय जनताको इन सब सेवा-कार्योंकी आवश्यकता थी ही। इनकी ओर हिन्दू धर्म या इस्लामका कोई ध्यान था ही नहीं। अतएव पादरियोंके ख्रिस्ती धर्म-प्रचार-सम्बन्धी प्रयत्नोंमें रुचि न रखते हुए भी कहना चाहिये कि हिन्दुस्तानियोंने प्रायः .खुशी-.खुशी उनकी इन संस्थाओंसे लाभ उठाया है।

३

फिर भी अपने माने हुए सत्यका प्रचार करनेकी ज़ोरदार हलचल या वृत्ति दूसरे धर्मके लोगोंके लिए असुविधा-जनक तो होती ही है। विशेषतः यह प्रचार उस समय और भी खटकता है, जब सत्यके रूपमें

जो आध्यात्मिक सिद्धान्त, धारणायें, आचार और रूढ़ियाँ उपस्थित की जाती हैं, वे दूसरे धर्मके विचारशील और विशेषज्ञ लोगोंको बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं मालूम होती; यही नहीं, बल्कि संकुचित भी प्रतीत होती हैं। और जब इसके साथ साम-दाम आदि उपायोंका और राज्याश्रयका योग मिल जाता है, तब तो इनके प्रति थोड़ा रोष भी उत्पन्न होता है।

दूसरे, जब किसी धर्मको अपनानेका मतलब केवल यही होता है कि जो आदमी आज तक राम, कृष्ण या शिवको मानता और पूजता आया है, वह अब ईशुको पूजने लगा है, और जो आज तक किसी हिन्दू आचार्यकी गादीमें श्रद्धा रखता था, वह अब पोपकी गादीमें श्रद्धा रखने लगा है, तब तो वह चीज़ असह्य नहीं होती। किन्तु इसके विपरीत, जहाँ ऐसे आदमीके जीवन, रहन-सहन, ब्याह-शादी, उत्तराधिकार आदिके क़ानून-क़ायदे तथा खान-पान आदि में भी इतना परिवर्तन करना ज़रूरी समझा जाय, कि जिससे वह अपने पुराने समाजके साथ न रह सके और समाज भी उसे अपने अन्दर न रख सके, तब वह धर्मान्तर दूसरे समाजके लिए असह्य हो जाता है। ख्रिस्ती और इस्लाम धर्मोंने हिन्दुस्तानमें जो कठिनाई खड़ी की है, वह उनके धर्म-सम्बन्धी विशिष्ट सिद्धान्तोंकी अपेक्षा उस नई समाज-रचना और रहन-सहनका परिणाम है, जिसे वे अपने साथ लाये हैं और जिसको शासकोंका समर्थन प्राप्त है। "मैं घर-घरमें कलह मचवाने आया हूँ।" मालूम होता है, मानो धर्म-प्रचारने ईशुकी इस प्रतिज्ञाको अक्षरशः सिद्ध करनेका यत्न किया है।

सत्यसे बढ़कर मूल्यवान् और कुछ भी नहीं है; सत्यके लिए

कुळने त्यजीए, कुटुंबने त्यजीए, त्यजीए मा ने बापरे,
भगिनी सुत दाराने त्यजीए, जेम तजे कंचुकी सापरे।

नरसिंह महेता आदि भक्तोंने भी यह चीज़ कही है, और

तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी;
हरि हित गुरु बलि, व्रजवनिता पति...........

ऐसे दृष्टान्त भी मिलते हैं।

इसलिए यदि ख्रिस्ती धर्मने सत्यके ज्ञानकी दृष्टिसे भारतवर्षको कोई नितान्त नया तत्त्व दिया हो, और उस तत्त्वका उनके द्वारा प्रचारित नई

समाज-रचना और रूढ़ियोंके साथ किसी प्रकारका कोई आवश्यक सम्बन्ध हो, तब तो उसके कारण हिन्दुस्तानमें उत्पन्न गड़बड़ आरम्भमें क्लेशकारक होनेपर भी स्वागत योग्य ही मानी जा सकती है।

४

अधिकांश सत्यशोधक किसी-न-किसी सम्प्रदायमेंसे ही निकले हुए होते हैं। साधनावस्थामें उन्हें अपने ही सम्प्रदायके इष्टदेव और उस सम्प्रदायमें मान्य उपासना-पद्धति ही सर्वश्रेष्ठ और सम्पूर्ण प्रतीत होती है। अपनी इस श्रद्धाके कारण ही वह प्रगति करता पाया जाता है। लेकिन इस प्रतीतिमें और वस्तुस्थितिमें फ़र्क़ हो सकता है। और इस फ़र्क़को समझनेकी शक्ति भी साधनाके आरम्भमें नहीं होती। किन्तु जब साधनाका विकास होता है और वह फल देनेकी तैयारीमें होती है, तब उसकी सम्प्रदाय-निष्ठामें बहुत ही फ़र्क़ पड़ जाता है। फिर साम्प्रदायिक इष्टदेव और साम्प्रदायिक उपासना उसके लिए शाखा-वृक्ष-न्याय (दूजके चाँदको देखनेके लिए पेड़की डालको निमित्त बनानेकी तरह)से निमित्तमात्र बन जाती है, और दूसरोंको दिखानेके लिए पेड़की शाखाके बदले घरका छप्पर भी उतना ही उपयोगी प्रतीत होता है।

इसी तरह अपनी अपरिपक्व साधनाके दिनोंमें ख्रिस्ती उपासककी स्वभावतः यह धारणा रह सकती है कि ईशु ख्रिस्त परमेश्वरके एक मात्र औरस पुत्र थे; वह तीसरे दिन क़ब्रमेंसे उठे थे; उन्होंने मानवजातिके उद्धारके लिए क्रूसारोहण करके भक्तोंके पापका प्रायश्चित्त किया था; अतः उनको अपने उद्धारकके रूपमें स्वीकार करना, इसके प्रमाण-स्वरूप उनके भक्तोंके साथ रोटी और द्राक्षासव ग्रहण करना, एवं उन्होंने तथा उनके खास-खास भक्तोंने जिस उपासना-पद्धतिका प्रचार किया है, उस पद्धतिसे उपासना करना, अनिवार्य ही है। उसके लिए यह सोचना भी सहज है कि दूसरे सब नीति धर्मोंका पालन करने, समाज-सेवाके काम करने और भगवान्का नाम लेने पर भी अगर मनुष्य ईशु ख्रिस्तमें विश्वास नहीं करता और उसे अपने तारनहारके रूपमें खुल्लमखुल्ला अंगीकार नहीं करता, तो वह गोते ही खाता है।

स्वामीनारायण संप्रदायके किसी समयके एक अनन्यनिष्ठ अनुयायीके नाते मैं इस मनोदशामेंसे भलीभाँति गुज़र चुका हूँ, इसलिए मैं इसे अच्छी तरह समझता हूँ।

जेने जोईए ते आवो मोक्ष मागवा रे लोल,
आज धर्मवंशीने द्वार, नरनारी—जोईए०
आवो प्रगट प्रभुने पग लागवा रे लोल,
वहालो तरत उतारे भवपार, नरनारी—जोईए०
जन्म मृत्युना भय थकी छूटवा रे लोल,
शरण आवो मुमुक्षुजन, नरनारी—जोईए०
शीद जावो छो बीजे शिर कूटवा रे लोल,
ह्यां तो तरत थशो पावन, नरनारी—जोईए०
भूंडा शीद भटको छो मनपंथमां रे लोल,
आवो सत्संग मेलीने मोक्षरूप, नरनारी—जोईए०
आणो प्रेम प्रतीत साचा संतमां रे लोल,
थाशे मोक्ष अतिशे अनूप, नरनारी—जोईए०
जुओ आँख उघाडी विवेकनी रे लोल,
शीद करो छो गोळ खोळ एक पाड, नरनारी—जोईए०
लीधी लाज बीजा गुरु भेखनी रे लोल,
काम क्रोधे लगाडी छे राड, नरनारी—जोईए०
एवा अज्ञानी गुरुना विश्वासथी रे लोल,
जाशो नरके वगाडतां ढोल, नरनारी—जोईए०
वहालो तरत छोडावे काळपाशथी रे लोल,
प्रेमानंद कहे आपे छे हरि कोल, नरनारी—जोईए०

इसमें और खिस्ती प्रचारककी श्रद्धा एवं मनोदशामें कोई अन्तर नहीं।

५

इसे हम अन्धश्रद्धा नहीं कह सकते, क्योंकि इसमें साधक अपनी श्रद्धासे प्रत्यक्ष लाभ भी अनुभव करता है। उसके द्वारा कुछ

अंशोंमें उसकी चित्तशुद्धि होती है; संसारके द्वन्द्व सहनेकी शक्ति प्राप्त होती है; शान्ति, आनन्द और उत्साहका अनुभव भी होता है। जब मनुष्य अपनी श्रद्धाको समझा नहीं सकता, स्वयं उसके लाभका अनुभव नहीं करता, और चूँकि उसे छोड़नेसे किसी भावी लाभको खोनेका या हानि होनेका डर है, इसीलिए उसे छोड़ता भी नहीं, तब कहा जा सकता है कि उसकी वह श्रद्धा अन्धश्रद्धा है। लेकिन इस श्रद्धाको हम मूढ़ श्रद्धा कह सकते हैं। कुछ हद तक यह मूढ़ श्रद्धा बुद्धि और गुणोंका विकास करनेके लिए प्रयत्नशील मनुष्योंके कामकी चीज़ है। लेकिन यदि मनुष्य प्रयत्नशील न हो और बुद्धिमान हो, तो यह श्रद्धा उसे दम्भी और पाखण्डी, और बुद्धिमान न हो, तो जड़ और धर्मान्ध बनाती है। प्राचीन शास्त्रोंके शब्दोंमें मूढ़ श्रद्धा रखनेवाले, अप्रयत्नशील, जड़ और धर्मान्ध पुजारियोंने तथा दम्भी और पाखण्डी फ़ैरिसियों व शास्त्रियोंने अन्तमें ईशुका वध कराके ही दम लिया। और, इन्हीं धार्मिक कलहों और कट्टरताओंकी एवं दूसरे प्रकारकी मान्यता रखनेका साहस करनेवालोंको क्रूरतापूर्वक सतानेकी परम्परा ख्रिस्तीधर्ममें भी आ घुसी।

भारतवर्षमें भी किसी समय शैव, वैष्णव, जैन, बौद्ध आदि धर्म-पंथ इस स्थितिमेंसे गुज़र चुके हैं। आज भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह परम्परा बिलकुल नष्ट हो गई है।

लेकिन भारतवर्षमें मूढ़ श्रद्धाकी भूमिकासे ऊपर उठे हुए अनेक हिन्दू-मुस्लिम संत हो चुके हैं। वे जड़ताका और दम्भका नाश तो न कर सके। जब तक अज्ञान है, किन्तु प्रयत्न नहीं है, तब तक जड़ता, और जब तक स्वार्थ है, तब तक दम्भ रहेगा ही। लेकिन कहा जा सकता है कि भारतवर्षकी संस्कृतिमेंसे कट्टरता और कटुताको निकाल फेंकनेमें उन्होंने पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

ख्रिस्ती और मुसलमान धर्मोंको तथा हिन्दूधर्मके विभिन्न सम्प्रदायोंके अनन्य भक्तोंको हिन्दुस्तानके हिन्दू और मुस्लिम संतोंसे यह ज्ञान प्राप्त करना ही होगा। बिना इसके वे न जीवनमें अपनी साधनाके फलका

प्रत्यक्ष अनुभव कर सकेंगे, न मूढ़ श्रद्धाकी भूमिकासे ऊपर उठ सकेंगे, और न धार्मिक झगड़ोंका कोई हल ही पेश कर सकेंगे ।

६

तात्त्विक ज्ञान और साम्प्रदायिक ज्ञान दोनों एक नहीं । तात्त्विक ज्ञान केवल आत्माका और ईश्वरका ही विचार करता है; उसीको महत्त्व देता है । साम्प्रदायिक ज्ञान ईश्वर और आत्माका कुछ ही विचार करता है, लेकिन अधिक विचार ईश्वरके किसी विशिष्ट प्रतिनिधिका और उसके ग्रंथोंका करता है, और उसीको विशेष महत्त्व देता है । साम्प्रदायिक मनुष्य उस प्रतिनिधिको ईश्वरका अवतार, पैग़म्बर, पुत्र, पिता (पुरुष-रूप), माता (स्त्री-रूप), सगुण, साकार या वाणीरूप कहे, उसे ईश्वरसे अभिन्न माने या भिन्न माने — सब अवस्थाओंमें उसका ध्यान ईश्वर और आत्माकी अपेक्षा प्रतिनिधि पर ही अधिक केन्द्रित रहता है । वह सिर्फ़ यही नहीं मानता कि '**मेरे लिए** प्रभु तक पहुँचनेका यही श्रेष्ठ मार्ग है,' बल्कि वह समझता यह है कि '**सब किसीके लिए** प्रभुतक पहुँचनेका यही **एक** द्वार है,' और अपनी इस धारणामें वह इस हद तक उलझ जाता है कि स्वयं प्रभु तक पहुँचनेका प्रयत्न एक ओर रह जाता है, और दूसरोंको ही उस मार्ग पर ले जानेकी अधीरतामें वह फँस जाता है । इस प्रकार जब मनुष्यका ध्येय स्वप्रयत्नसे हटकर दूसरोंको उस ओर ले जानेका बन जाता है, तो फिर वह उसके लिए साम, दाम, दण्ड, भेद आदि हर तरहके उपायोंका प्रयोग करने लग जाता है । मृत्युके बादके स्वर्ग या मोक्ष और नर्कके दो सनातन लोभ और भय तो उपस्थित किये ही जाते हैं, लेकिन इनके साथ-साथ ऐहिक लोभ और भय भी दिखाये जाते हैं । फिर, श्रद्धा बैठानेके लिए झूठी कथायें गढ़ने, दूसरे सम्प्रदायोंकी निन्दा करने, चमत्कारोंकी चकाचौंध पैदा करने आदिके अनेक मिथ्या प्रयत्न भी शुरू हो जाते हैं । इस प्रकार मनुष्य जिसे अपने मोक्षका उत्तम द्वार मानता था, और जिसे वह उत्तम द्वार बना सकता था, उसे दूसरोंके मोक्षका द्वार बनानेके मोहमें वह अपने पतनका द्वार बना बैठता है । दूसरोंको तो मोक्ष जब मिलने-वाला होगा, मिलेगा ।

७

प्रकट प्रभाकर होय मुनि दृग बिन नहिं देखात,
संत बिना त्यों प्रकट प्रभु जनको नहिं समझात;
(कवि दलपतराम)

तथा

जेनी देवे पराभक्ति तेवी ज गुरुने विषे,
ज्ञान ने धर्मनां तत्त्वो प्रकाशे ते पवित्रने;
(श्वेताश्वतर उपनिषद्)

ये वचन सच हैं। लेकिन जब कोई अनुयायी इसका अर्थ यह करने लगे कि "मेरा गुरु सबसे श्रेष्ठ है, यही नहीं, बल्कि उसके सिवा दूसरा कोई गुरु है ही नहीं, न कभी हुआ था, न कभी होगा; उसके नामकी और श्रद्धाकी नौका ही ऐसी है कि अनुयायीको कुछ करनेकी ज़रूरत ही नहीं रह जाती; उसके जन्मसे पहले न किसीको अन्तिम मोक्ष प्राप्त हुआ था और न भविष्यमें उसे अपनाये — अंगीकार किये — बिना किसीको अन्तिम मोक्ष प्राप्त हो सकेगा" — तब कहना चाहिये कि वह मूढ़ बनकर मूढ़ताका ही प्रचार करने लगता है।

वस्तुतः ईश्वर कोई ऐसी चीज़ नहीं, परमधाम (स्वर्ग) कोई ऐसा स्थान नहीं, और मोक्ष कोई ऐसी स्थिति नहीं, जो मरने पर मिलती हो, और जिसे पानेके लिए हमारी पहचान करानेवाले और हमें प्रतीति करानेवाले किसी मध्यस्थकी आवश्यकता हो। शास्त्रकारोंने और काव्यप्रेमी सन्तों व गुरुओंने इस प्रकारके विचार उत्पन्न करनेवाले रूपकोंकी रचना करके एक ऐसी शाब्दिक मायाका निर्माण कर रक्खा है कि साधकके लिए ईश्वर-रचित सांसारिक मायासे निस्तार पानेकी अपेक्षा इस शास्त्र-रचित मायाको पार करना अधिक कठिन हो जाता है। 'ईश्वरका धाम — मंदिर — तेरे अन्दर ही है,' 'ईश्वरको तू अपने हृदयमें ही ढूँढ़,' 'मैं और परमेश्वर भिन्न नहीं हैं,' 'ईश्वर, ईश्वरपुत्र और आत्मा तीनों एक ही हैं,' ये उद्गार स्वयं उन सन्तोंके होते हुए भी ऊपरके उन स्थूल वर्णनोंकी मायाको मिटानेमें ये असमर्थ सिद्ध होते हैं।

८

आखिर इन वाक्योंका अर्थ क्या कि 'ईश्वर क़यामत (प्रलय)के दिन न्याय करेगा, और उस समय मैं जिन्हें अपनाऊँगा (अथवा जिनने मुझे अपनाया होगा) उन्हें स्वर्ग मिलेगा, और जिन्हें मैं अस्वीकार करूँगा (या जिनने मुझे अस्वीकार किया होगा) उन्हें अनंत नर्क मिलेगा,' 'और क़यामतके दिन मैं परमात्माके सिंहासनके समीप बैठा मिलूँगा, और किसीको अपने दायें बैठाऊँगा, और किसीको बायें।' क्या ये वाक्य मिथ्या हैं? क्या स्वर्ग, वैकुण्ठ, गोलोक, अक्षरधाम और नरककुण्डकी बातें झूठ हैं? पवित्र एवं सत्यवादी सन्तोंने आखिर किस मतलबसे देवादिकोंके और उनके स्थानोंके ऐसे वर्णन किये हैं? किसलिए फ़रिश्तोंकी और जय, विजय, श्रीदाम, पिटर आदि द्वारपालोंकी कथायें कही हैं? किस हेतुसे लक्ष्मी और विष्णुके वैकुण्ठ-विहारका, राधा और कृष्णके गोलोक-विहारका, और अक्षरमुक्तोंके अक्षर-विहार आदिका वर्णन किया है? किसलिए इतने आग्रहके साथ साधना और पुरुषार्थकी अपेक्षा परमेश्वरके किसी विशिष्ट प्रतिनिधि द्वारा प्राप्त अनुग्रह पर और उसकी तारक शक्ति पर विश्वास रखनेको कहा जाता है?

विचारशील अनुयायीको ये सब प्रश्न परेशान करते हैं। इसमें आश्चर्य भी क्या? जिसे आप सत्पुरुष अथवा सद्ग्रन्थ मानते हैं, यह कैसे हो सकता है कि उसकी एक बात पर विश्वास रक्खा जाय और दूसरीका त्याग किया जाय?

लेकिन हम उलट कर पूछें कि ऐसा क्यों नहीं किया जा सकता? कोई कितना ही बड़ा ख्रिस्त, पैग़म्बर या अवतार क्यों न हो, कोई कितना ही प्राचीन और आदरप्राप्त शास्त्र क्यों न हो, क्या कारण है कि उसके विषयमें हम अपनी विवेकबुद्धिका उपयोग न कर सकें? क्या ज़रूरत है कि हम उसे मूढ़ या अन्धश्रद्धाके साथ मानें ही?

अनुयायी कहेगा: "हम पामर मनुष्य ठहरे; हमारी बुद्धि अल्प और मलीन ठहरी; जो चीज़ हमारी बुद्धिको न पटे, उसे न माननेका आग्रह रक्खें और कहीं उसमें हमसे भूल हो जाय तो? अगर ग्रंथोंमें लिखी हुई

बातें अक्षरशः सच हों और हम उन्हें छोड़ बैठें, तो आगे हमारी क्या दशा हो? हमारी अधोगति ही न हो?"

अधोगतिका यह डर ही विवेकबुद्धिको शुद्ध बनानेमें बाधक होता है। मृत्युके बाद अपने अस्तित्वको बनाये रखनेकी और उसे ऐश्वर्य-संपन्न एवं सुखमय करनेकी मनुष्यको इतनी अधिक साध है कि इसके लिए वह अपनी कल्पना द्वारा अनेक प्रकारके सुख-दुःखोंकी रम्य अथवा भयानक सृष्टियोंका निर्माण करता है। उसे ईश्वरकी उतनी चिन्ता नहीं है, जितनी अपने स्वर्ग और नर्ककी है। वह स्वर्गप्राप्ति और नर्कनिवारणके लिए ही ईश्वरको अपनाता है। लेकिन ईश्वरको अपनाकर भी वह उसे समझ तो नहीं पाता। इसलिए वह उन मनुष्योंके पीछे पड़ता है, जिन्हें वह कुछ समझ सकता है। और ऐसे मनुष्योंको ईश्वरके स्थान पर बैठाकर वह उनके वचनोंका अनुसरण करता है।

किन्तु यदि मनुष्य सन्मार्गका अनुसरण करे — यह सोचकर कि विवेककी कसौटीपर भी वही सत्य और सुन्दर है — और कुमार्गका त्याग करे — असत्य और अशुभ समझकर ही — और मृत्युके बाद इस सबका बदला पानेकी इच्छा, या अपना क्या होगा, इसकी चिन्ता ही न करे, तो उसे अपनी विवेकबुद्धिका उपयोग करनेमें किसी प्रकारकी कठिनाई न हो। फिर प्रामाणिकतापूर्वक भूल करनेमें भी उसे हिचकिचानेकी ज़रूरत न रह जाय।

९

उपनिषदोंके ऋषि, व्यास, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईशु, महम्मद, नानक, कबीर, सुकरात, कन्फ्यूशियस, लाओत्ज़े आदि अनेक धर्मात्मा इस भूतल पर हो चुके हैं। उनके अपने या उनसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक महान् ग्रंथ हमारे हाथमें हैं। इन ग्रंथोंमें मनुष्य जातिके लिए सदैव उपयोगी रहनेवाली विविध सामग्री प्रस्तुत है। उनमें कई सनातन सत्यों और सिद्धान्तोंका निरूपण है। उस समयके समाजके लिए उपयोगी कुछ बातें भी उनमें हैं। प्रत्येकमें किसी-न-किसी दोषसे युक्त कुछ सिद्धान्त और उपदेश भी हैं। प्रत्येक धर्मात्माके और प्रत्येक ग्रन्थके गुण और दोषोंमें उसकी अपनी

कोई-न-कोई विशेषता है। हमारे लिए ये सब आदरणीय हैं; अर्थात्, आदरपूर्वक विचार करने योग्य हैं। लेकिन इनमेंसे एकके लिए भी यह नहीं कहा जा सकता कि उनके जीवन या विचारमें अग्राह्य कुछ है ही नहीं।

ईश्वरोपासकको तो सबके प्रति आदर-भाव रखना चाहिये। मनुष्यका उत्तम स्वभाव भी एक प्रकारका नहीं होता। हीन स्वभाव भी एक तरहका नहीं होता। इन धर्मात्माओंको हम उत्तम प्रकृति या स्वभावके विविध नमूने कह सकते हैं। उपासकको इनमेंसे जो भी नमूना अपने लिए अधिक-से-अधिक अनुकूल प्रतीत हो, उसके जीवन और ग्रंथोंका वह बार-बार चिन्तन-मनन करे, अनुसरण करे, और उसमेंसे अपने लिए प्रेरणा पाये। किन्तु इसके लिए यह ज़रूरी नहीं है कि वह उस पुरुषको ईश्वर, प्रतिनिधि, या पैग़म्बर माने या उसके ग्रंथको ईश्वरीय वाणी समझे। उसको अपने और परमेश्वरके बीचमें किसी प्रकारके मध्यस्थको माननेकी आवश्यकता नहीं। हो सकता है कि उस धर्मात्माके जीवन-कालमें परमात्मा, जितना आज हमें अपने निकट मालूम होता है, उससे अधिक उसके निकट रहा हो। लेकिन हमें यह समझ लेना चाहिये कि हम कैसे ही क्यों न हों, तो भी ईश्वर जितना उसके निकट है, उससे कहीं अधिक आज वह हमारे निकट है। क्योंकि वह धर्मात्मा हमारे लिए तो एक कल्पना ही है, जिसे उसका चरित्र सुनकर हमने अपने मनमें स्थान दिया है। उसका संबंध भूतकालसे है। कइयोंके चरित्र दन्त-कथाओं और अलंकारपूर्ण काव्योंमेंसे प्रतिबिम्बरूप प्रकट हुए हैं। जैसे विविध प्रकारकी गोलाईवाले दर्पणोंमें प्रतिबिम्बित किसी चीज़को देखकर हम मूल वस्तुके वास्तविक रूपकी सच्ची कल्पना नहीं कर सकते, वैसे ही इन ग्रंथोंसे मूल नायकके सच्चे चरित्रको जानना असम्भव हो जाता है। इसके विपरीत, ईश्वर निरी कल्पना नहीं है। वह हमारे (अर्थात् आत्माके) साथ एकरूप बनी हुई वस्तु है। वह वर्त्तमान है। इसलिए आज तो ईश्वर हमारे ही निकट अधिक है। यदि धर्मात्माओंके ये चरित्र और उनकी ये वाणियाँ हमें इस निकटताका बोध करा दें, तो कहा जा सकता है कि वे सब हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं। लेकिन यदि उनके परिणामस्वरूप भक्त ईश्वरको एक ओर रखकर अपने धर्मात्माको ही

कल्पना द्वारा निकट लानेका यत्न करे, तो कहा जायगा कि वह धर्मात्मा और वह धर्मग्रंथ उसके लिए भ्रामक सिद्ध हुए हैं।

१०

लेकिन यहाँ यह शंका की जा सकती है कि आखिर मैं 'ईश्वर' किसे कहता हूँ? इन धर्मात्माओंको और इनके ग्रंथोंको छोड़ ईश्वरके अस्तित्वका भी दूसरा प्रमाण क्या है? यदि इन धर्मात्माओं द्वारा वर्णित स्वर्ग, नरक, क़यामत, पुनर्जन्म, अवतारवाद, पैग़म्बरवाद, पुत्रवाद आदिमें दोष हो, तो उनके ईश्वरके अस्तित्व-संबंधी विधानमें भी दोष क्यों न हो? यह कहना कि ईश्वर हमारे अधिक निकट है, यह भी तो कहनेवालेकी कल्पनाको ही मान लेनेके समान है न? हमें (पामर मनुष्योंको) तो ईश्वरके अस्तित्वका भी अनुभव कहाँ है? कल्पना द्वारा और चरित्रों द्वारा इन धर्मात्माओंकी तो आखिर कोई-न-कोई मूर्ति खड़ी भी की जा सकती है; किन्तु ईश्वरके सम्बन्धमें तो कोई कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसी दशामें धर्मात्माओंके साथ ईश्वरको भी ताक पर बैठा देनेका सीधा मार्ग क्यों न अपनाया जाय? क्यों न अच्छी संगति, अच्छा चाल-चलन, अच्छे काम, और पारस्परिक प्रेम, दूसरोंके लिए खपना-खटना, दूसरोंकी सेवा करना, समाजमें सबके साथ न्याय और नीतिका व्यवहार रखना, आदि शुद्ध मानवधर्मोंका पालन करके ही संतुष्ट रहा जाय?

बात बहुत सच है। ईश्वरकी और आत्माकी सम्पूर्ण छान-बीनके बाद भी इससे बढ़कर दूसरा कोई जीवन-मार्ग है ही नहीं। लेकिन मनुष्यको तब तक संतोष नहीं होता, जब तक वह समझ नहीं लेता कि उसका शुद्ध धर्म क्या है और उस धर्मका प्रयोग क्या है। आखिर उपर्युक्त धर्म ही क्यों शुद्ध मनुष्यधर्म है, और सुखसे जीना और भोग भोगना और सुखोपभोगको प्राप्त करनेके लिए सब प्रकारके उपायोंको आज़माना ही मनुष्यधर्म क्यों न हो? इस प्रकार जब मनुष्य अपने जीवनके हेतुका विचार करने बैठता है, तब उसके दिलमें सवाल उठता है कि मैं कौन हूँ और यह जगत् क्या है? फिर इन सवालोंमेंसे ईश्वर और आत्माके शोधका निर्माण होता है। और इस शोधकी प्रतीक्षाके फल-स्वरूप ही भक्ति, योग, कर्म, आदिका जन्म होता है। इस प्रकार 'ईश्वर'—

अर्थात् मनुष्यके अपने एवं समूचे जगत्के मूलमें रहे हुए आदि तत्त्वका सूचक — शब्द या दूसरा शब्द उत्पन्न होता है । और फिर तत्सम्बन्धी श्रद्धाका प्रचार होता है ।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥
अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चाति तरन्त्येव मृत्यु श्रुति परायणाः ॥ (गीता–१३, २४–२५)

इस प्रकार जो उसकी खोजमें स्वयं पैठनेकी पूरी साधना नहीं कर सकते, वे उसे जाननेवालोंके शब्द पर विश्वास रखकर उसकी भक्ति करते हैं।

इसमें कोई दोष नहीं । क्योंकि वह किसी असत् वस्तुकी या निरे काल्पनिक विषयकी श्रद्धा नहीं होती । जब मनुष्य स्वयं या उपदेशक यह मान लेता है कि वह ईश्वर नामक किसी गूढ़ शक्तिके अस्तित्वको स्वीकार करके उसकी भक्ति नहीं कर सकता, तब वह ईश्वरको किसी तरह स्थूल-रूपमें उपस्थित करना शुरू करता है, और उसीकी भक्ति करने लगता है । बस, यहींसे दोषोंका निर्माण शुरू होता है । यदि हम समझदारीके साथ सोचेंगे, तो हमें पता चलेगा कि धर्मके नामपर जो झगड़े होते हैं, वे वास्तवमें ईश्वरके लिए नहीं होते; बल्कि मनुष्यों द्वारा मान्य उसके प्रतिनिधि, पैग़म्बर आदिके लिए और उनके नाम पर होते हैं । जिस प्रकार प्रजातन्त्रोंमें एक राजाको पदभ्रष्ट करके दूसरेको पदारूढ़ करनेके लिए झगड़े नहीं होते, बल्कि राजाका प्रधानमंत्री कौन बने, इसी प्रश्नको लेकर विभिन्न दलोंमें कलह होता है, उसी प्रकार हरएक आदमी यह चाहता है कि जिस धर्मात्माको उसने अपनाया है, उसीको लोग परमेश्वरका प्रतिनिधि या पैग़म्बर स्वीकार करें, और उसीकी धाकमें रहें ।

११

ऐसी दशामें ईशुके अथवा देश-विदेशके अन्य अनेक धर्मात्माओंके सम्बन्धमें मनुष्यको अपने भाव किस प्रकारके रखने चाहिये ?

पहली बात तो यह है कि किसीके भी विषयमें यह मानना आवश्यक नहीं कि ईश्वर नामक कोई एक सत्त्व जो राजाके सदृश बलवान और दिव्य है, किसी चमत्कारपूर्ण रीतिसे अवतार लेता है, अथवा अपने किसी प्रिय

(मान्य) सत्त्वको ख्रिस्त या पैग़म्बर नियुक्त करके भेजता है। हाँ, हमें यह समझ लेना चाहिये कि यह जगद्व्यापी चैतन्य शक्ति जिस तरह महान् सूर्यमण्डलके समान प्रचण्ड किन्तु जड़ रूपमें प्रकट होती है, सिंह और हाथीके समान प्रचण्ड किन्तु प्राणिरूपमें व्यक्त होती है, उसी तरह विविध प्रकारकी शक्तिवाले मनुष्योंके रूपमें भी प्रकट होती है। नेपोलियन और हिटलर तथा रावण और हिरण्यकशिपुके सदृश एक प्रकारका पराक्रम करनेवाले पुरुष भी उसी शक्तिसे उत्पन्न हुए हैं; और राम-कृष्ण, बुद्ध, महावीर सदृश दूसरे प्रकारका पराक्रम करनेवाले पुरुष भी उसी शक्तिके अंशरूप प्रकट हुए हैं। पहली श्रेणीके बलवीर भी संसारको किसी-न-किसी प्रकारकी विरासत दे गये हैं। और उनके कार्योंके फल संसारको दीर्घकाल तक भोगने पड़े हैं। दूसरी श्रेणीके धर्मवीरोंने भी अपना कोई उत्तराधिकार छोड़ा है, और संसार उनके कार्योंके भी फल भोग रहा है।

किन्तु दूसरी श्रेणीके महापुरुषोंने जो भी कुछ किया, उसमें उनके हाथों कभी कुछ भूलें भी हुई होंगी, तो भी संसारको उनके बारेमें यह अनुभव हो चुका है कि उन्होंने अपनी शक्ति और जानकारीके अनुसार अपनी बुद्धिको अधिक-से-अधिक शुद्ध रखकर मानवहितकी दृष्टिसे ही अपने सब कार्य किये थे। पहली श्रेणीवालोंके विषयमें विपरीत अनुभव हुआ है। इस कारण पहली श्रेणीवाले दीर्घकाल तक इतिहासमें स्मरणीय रहने पर भी वे सम्पूर्ण मानवजातिके आदरके पात्र नहीं बन सकते, जबकि दूसरी श्रेणीके सभी पुरुष मनुष्योंके आदरपात्र ही रहते हैं। वे धर्मात्मा कहलाते हैं।

ईशु, महम्मद, गांधी आदि धर्मात्मा श्रेणीके महापुरुष हैं। इनके कर्मों और वाणीमें कोई दोष रहता भी है, तो वह अपूर्ण समझ और अपूर्ण जानकारीके कारण होता है, इनकी दुष्ट निष्ठा (नीयत)के कारण नहीं। इसी कारण इनके चरित्र और वाणीसे सत्प्रेरणा प्राप्त होती है। इस सत्प्रेरणाकी प्राप्तिके लिए इनके चरित्रों और ग्रंथोंका आदरपूर्वक मनन और विवेकपूर्वक अनुसरण करना चाहिये। बचपनसे ऐसोंके चरित्र और वाणीका व्यासंग रखना चाहिये और उनसे शुभ प्रेरणा पानी चाहिये। अपने और दूसरोंके अनुभवोंको और उनके तथा अपने काल एवं समाजके भेदोंको ध्यानमें रखकर उनके द्वारा सूचित विचारों, प्रवर्तित रूढ़ियों और परम्पराओं

आदिका तारतम्य बुद्धिसे स्वीकार या अस्वीकार करनेकी अपनी तैयारी रखनी चाहिये । इस युगके ऐसे अधिकारी पुरुषको पहचानने और उसका पदानुसरण करने योग्य बुद्धिकी ताज़गी धारण करनी चाहिये । और फलतः किसीको भी ईश्वर या ईश्वरके अवतार, प्रतिनिधि या पैग़म्बरके रूपमें पूजना न चाहिये । ईश्वरका ध्यान और विचार तो अन्दर-बाहर व्याप्त एक गूढ़ चैतन्य शक्तिके रूपमें ही करना चाहिये । यह सोचकर कि साकार या निराकार रूपमें वह किसी भी एक मर्यादित स्थानमें पूर्ण रूपसे वर्तमान है, ईश्वरको अपनी इस धारणासे बाँधना नहीं चाहिये ।

१२

ईशुको 'मानव-पुत्र' और 'ईश्वर-पुत्र,' ये दो उपाधियाँ दी जाती हैं । यहूदी और ख्रिस्ती परम्परामें पुत्रका अर्थ चाहे जो होता हो, हम उसको विशेष व्यापक अर्थमें समझ सकते हैं । प्राचीन कालमें हमारे यहाँ ग़ुलामोंको छोड़कर शेष सब सेवक पुत्र शब्द द्वारा सम्बोधित किये जाते थे । शिष्य भी पुत्र कहा जाता था, और पुत्रका परिचय सेवकके रूपमें देनेकी प्रथा थी । अतएव मानव-पुत्र और ईश्वर-पुत्रको आजकलकी भाषामें हम मानव-सेवक और ईश्वर-सेवक कह सकते हैं । इसका तात्पर्य है, मानवकी — जगत्‌की — सेवा द्वारा ईश्वरकी आराधना करनेवाला पुरुष । ख्रिस्ती धर्मकी जो अपनी खास देन है, वह भी यही है । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, दूसरे प्राणियोंके अज्ञान और दु:खका निवारण करने के लिए अपने प्राण तक अर्पण करनेके गुणको ख्रिस्ती भक्तोंने अधिक-से-अधिक मात्रामें विकसित किया है । ईशुके जीवन-चरित्रसे हमें यही प्रेरणा अधिकाधिक लेनी चाहिये । इस लोकके प्रति उसका वैराग्य अथवा परलोकके प्रतिकी उसकी ममता रोगी, दरिद्री, दुःखी और पतितकी सहायता करनेमें या बालकोंसे प्रेम करनेमें मोहका कोई भय न रखते थे । ऐसे काम करते हुए उसकी धर्मनिष्ठा शब्बाथ दिनसे या छूतछातसे डरती न थी । और साथ ही, इस प्रकारकी सेवा करते हुए सेव्यजनोंके अन्तःकरणोंको सुधारनेकी बात वह कभी भूलता न था । यह ईश-मानव-सेवायोग सब किसीके सीखने लायक़ है ।

शब्दसूची

(पुस्तकमें आये हुए विदेशी शब्दोंके अंग्रेज़ी पर्याय । कोष्ठकमें हिज्जोंके विकल्प सूचित किये गये हैं ।)

इटूरिया – Iturea या Etruria
ईरान – Persia
ईशु – Jesus
एज़ायाह – Ezias (-sa)
एलीज़ाबेथ – Elizabeth (-s-)
कैपरनाउम – Capernaum
कोहेन – Kohen, a priest
कोहेन हग्मादोल – Ḥigh priest
ख्रिस्त – Christ
गैन्नेसेरेत – Gennesaret
गेरिज़िम – Gerizim
गैलिली – Galilee
ज़खारिया – Zachariah (-s-)
ज़ेलोत – Ze(a)lots
तंबूनिवास – देखो सुक्कोथ
दशनगर – Decapolis
दाणी – a publican
दावीद (दाऊद) – David
दीक्षा – Baptism;
°-देनेवाला – Baptist
नैज़ेरथ – Nazereth (-s-)
पिरिया – Pir (a)ea
पुजारी, महा° – देखो, 'कोहेन'
पैलेस्टाईन – Palestine (-a-)
पेसाह – Passover
फ़ैरिसी – Pharisee
बेथलेहेम – Bethlehem
बेथॅनी – Bethany
मारिया – Mary
मिस्र – Ejypt
मूसा-मोशे – Moses
मृतसर – Dead Sea
मसीहा – Messia*h* (-s)
मोशे – देखो-मूसा
यरुशालेम – Jerusalem
यहूदी – Jew
यहूदिया – Jud (a)ea
यार्देन – Jordon
यूनान – Greece -नी- Greek
येहूदा – Judas
योसेफ – Joseph
योहा(ह्ना)न – John
रूम – Rome -मी- Roman
रैब्बी – Rabbi
लेबानॉन – Lebanon
शब्बाथ – Sabbath
शलोमो – Solomon
सिनाई – Sinai
सिनैगॉग – Synagogue
सीरिया – Syria
सुलेमान – देखो शलोमो
सुक्कोथ (तंबूनिवास, – Succoth Tabernacles
सैड्यूसी – Sadducee
सैमारिया – Samaria – यन (-ritan)
सेमेटिक – Semetic
हेरोद – Herod